Chapter-3

तृतीय अध्याय

महाकवि निराला का दर्शन

(निराला-काव्य में प्रतिफलित विविध मान्यताओं एवं विचारों की दर्शन के आधार पर व्याख्या)

प्राक्कथन : प्रथम दो अध्यायों मे क्रमश: निरालाजी के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, तथा हिन्दी के दार्शनिक कवियों की परम्परा का अध्ययन एवं अनुशीलन कर निरालाजी का उक्त परम्परा में स्थान निश्चित करते हुए उनके दार्शनिक-कवि -व्यक्तित्व को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया.

निरालाजी के व्यक्तित्व की चिन्तनशीलता एवं बौद्धिकता के कारण उनका सचेत, बुद्धिनिष्ठ कवि-रूप देखा जा सकता है. यदि एक ओर संस्कृत और बंगला साहित्य ने उनके कवि-मानस में रसात्मक चेतना का संचार किया है तो दूसरी ओर भारतीय दर्शन की विविध धाराओं एवं स्वामी विवेकानन्द की विचार-क्रान्ति ने उनकी बौद्धिक चेतना का विकास किया है. २० वी शताब्दी की विभिन्न विचार-धाराओं पर भी चिन्तन एवं मनन करते हुए उन्हें निरालाजी ने रसात्मक बनाने का प्रयास किया है.

आशय यह कि निरालाजी ने किसी मौलिक दर्शन का प्रतिपादन नहीं कियक, अपितु मौलिक काव्य का सृजन किया, अत: वे मूलत: कवि हैं, परंतु चिन्तनप्रधान कवि-व्यक्तित्व होने के कारण उनके काव्य में दर्शन एवं काव्य का सहज संयोग हो गया है. इन दोनों तत्वों का संयोग करते हुए भी यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनिय है कि निरालाजी ने न तो भारतीय दर्शन की परम्परा को छोडा है, और न ही वे भारतीय काव्य परम्परा से विच्युत हुए हैं. अतएव विविध दर्शनों की सीमा में रहकर ही उनमें वे कितने गहरे गये हैं, अथवा उन्होंने दर्शन को किस प्रकार कलात्मक स्वरूप प्रदान किया है, यही प्रस्तुत अध्याय के विवेचन का मूल लक्ष्य है.

प्रस्तुत अध्याय का अध्ययनक्रम निम्नलिखित रखा जा सकता है:

१ - महाकवि निराला के दर्शन का स्वरूपात्मक परिचय
२ - महाकवि निराला की चिन्तनधारा
३ - महाकवि निराला की आस्था के विषय
४ - समापन

१ - <u>महाकवि निराला के दर्शन का स्वरूपात्मक परिचय:</u>

१ - ०. भारतीय काव्य में सामान्यत: आत्मवादी दर्शन ही प्रधानत: दृष्टिगत होता है. परंतु निरालाजी के काव्य में परम्परागत भारतीय आत्मवादी दर्शन एवं आधुनिक अनात्मवादी दर्शन, दोनों का प्रभाव दिखाई पडता है. निराला-काव्य में उक्त दोनों का स्वरूप,

निराला-काव्य में उक्त दोनों प्रकार के दर्शनों का स्वरूप, अथवा निरालाजी की दार्शनिक मान्यताओं का सीमांकन उनकी काव्य रचनाओं के ही आधार पर किया जा सकता है. परंतु इससे पूर्व, आत्मवादी दर्शन एवं अनात्मवादी दर्शन से हमारा क्या तात्पर्य है, यह संक्षेप में स्पष्ट करना आवश्यक है.

१-१ आत्मवादी एवं अनात्मवादी दर्शन : आत्मवादी दर्शन से हमारा तात्पर्य उन दर्शनों से है, जिनके अन्तर्गत आत्मा, जीव, जगत एवं ब्रह्म का बौध्दिक धरातल पर समग्रतापूर्ण विचार किया जाय. तथा अनात्मवादी दर्शन उन्हें कहा जा सकता है जिनके अन्तर्गत एकमाध लौकिक धरातल पर जगत और जीवन के विषाय में तर्कसंगत विचार किया जात है. संक्षेप में कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत अन्त:सत्ता और सार्वभौम अन्त:सत्ता के विशिष्ट स्वरूप तथा पारस्परिक संबंध के स्वरूप की चर्चा आत्मवादी दर्शन के अंतर्गत होती है. जिस दर्शन में जीवन के अंतस्तत्व की व्याख्या आत्मा को उद्देश्य में रखकर न की जाती हो, वह अनात्मवादी दर्शन कहा जा सकता है. प्रथम कोटि के दर्शनों के अंतर्गत भारतीय वेदान्त, सांख्य, योगी आदि का उल्लेख किया जा सकता है. दूसरी कोटि के अंतर्गत आधुनिक काल के विविध दर्शनों का निर्देश किया जा सकता है, यथा - राष्ट्रीयतावाद, समाजवाद, अस्तित्ववाद इत्यादि.

१-२ निरालाजी के दर्शन का स्वरूप : निरालाजी के काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में आत्मवादी दर्शनों के अन्तर्गत इन दर्शनों का प्रभाव मिलता- - शांकर तथा वैष्णव अद्वैत, शाक्त, योग आदि.

दर्शन का, और विशेषतः स्वामी विवेकानन्द द्वारा व्याख्यायित वेदान्त का प्रभाव निरालाजी के काव्य में विशेष रूप से मिलता है.[1] अनात्मवादी दर्शनों के अन्तर्गत निराला-काव्य में स्थूल रूप से निम्नलिखित दर्शनों का उल्लेख किया जा सकता है - राष्ट्रीयतावाद, व्यक्तिवाद समाजवाद इत्यादि.

वस्तुतः निराला- काव्य में उक्त दोनों दर्शनों का रूप सर्वथा पृथक् नहीं मिलता. प्रायः उन्हें, अनात्मवादी विचारधारा को पार कर आत्मवादी विचारधारा में, अत्यन्त स्वभाविक एवं सहज रूप में संक्रमण करते हुए देखा जा सकता सकता है. अतः निराला-काव्य में दर्शन के इन दोनों रूपों का विलयन दृष्टिगत होता है. आशय यह कि यद्यपि २० वीं शताब्दी के कतिपय दार्शनिक विचारों का प्रभाव जिस अंश में उनके काव्य में मिलता है, उस अंश तक वे निश्चय ही आधुनिक कहे जा सकते है, परंतु फिर भी वैचारिक भूमि पर मूलतः वे विशुध्द भारतीय है. अतएव उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उनके काव्य में प्राचीन एवं आधुनिक दृष्टि का जो समन्वय मिलता है वह वस्तुतः उनके संपूर्ण कवि-व्यक्तित्व का ही एक वैशिष्ट्य है.

यद्यपि निरालाजी के काव्य में दर्शन का सहज संयोज दृष्टिगत होता है, परंतु वस्तुतः वे दर्शन की किसी विशिष्ट सरणि (सिस्टम) को स्वीकार नहीं करते. क्यों कि वे मूलतः काव्य-सृजन ही उनका प्रमुख लक्ष है, दर्शन का प्रतिपादन नहीं, अतएव क्यों कि वे सरणि-निर्माता (system - builder) नहीं है, अतः उनके काव्य में से चिन्तन-गर्भित शब्द चुनकर ही उनकी दार्शनिक चिन्तनधारा का अनुशीलन किया जा सकता है. आशय यह कि निरालाजी ने दर्शन की शब्दावली में नहीं, अपितु काव्य की शब्दावली में चिन्तन को मूर्त रूप प्रदान किया है. चिन्तन को कम-

---

१- तुलः अ. निराला अभिनन्दन ग्रंथ -२७वां संस्मरण पृष्ट ९३ तथा ३७ वाँ संस्मरण पृष्ट -११४.

तुलः आ. शर्मा रामविलास - निराला पृष्ट ३८, भटनगर रामरतन, निराला और नवजगरण पृष्ट १८८,१९४.

काव्यात्मक मूर्त रूप प्रदान करने की प्रक्रिया में वस्तुत: निरालाजी की 'आस्था' का स्वरूप ही स्पष्ट होता है.

२ - निराला जी की चिन्तनधारा :

किसी भी उत्तम काव्य का अध्ययन करने से स्पष्ट होगा कि उसके काव्यार्थ में ही कवि के भाव एवं विचार का संश्लिष्ट रूप निहित रहता है. वस्तुत: श्रेष्ठ रचनाओं मे विचार, काव्य के सौंदर्य के उपकारक होते है. इस दृष्टि से निराला-काव्य में भी विचार कविता के अंग है, अर्थात् काव्यार्थ के अंग है. परन्तु क्यों कि विशिष्ट शब्दों के चयन द्वारा कवि, कलात्मक रूप का सृजन करता हुआ उन शब्दों को नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है, अत: समस्त काव्य का जो अर्थ ध्वनित होता है वह कवि की 'आस्था' को ही उद्घाटित करता है. आशय यह कि निरालाजी के काव्य-सौंदर्य को उद्घाटित करने के लिये, गंभीर चिन्तन एवं मनन के फलस्वरूप उनकी आस्था जिन विचारों द्वारा प्रगट हुई है, उनके प्रमुख विषयों को संक्षेप में निम्नलिखित क्रम में निबध्द कर, निरालाजी की चिन्तनधारा को स्पष्ट किया जा सकता है.

निरालाजी के संघर्षमय, करूण जीवन तथा अंतमें उसकी शोचनीय परिणति के कारणों में से एक कारण यह माना जाता है कि जीवन को स्थिरता प्रदान करने के हेतु जिस केन्द्र, बिन्दु की आवश्यकता होती है वही

निरालाजी खो बैठे थे.[1] परंतु यह धारणा ठीक नहीं है. बाल्यकाल से अंत तक निरालाजी का जीवन आस्तिक्य की भावना से आबध्द रहा है.[2] १. यही वहाँ केन्दीय तत्व था जिसने उन्हें टूटने से बचाया.

आस्तिकता का अर्थ वर्तमान भारतीय भाषाओं में, ईश्वर में विश्वास करना माना जाता है, जबकि भारत के प्राचीन दर्शन-ग्रंथों में वेदों की सत्ता स्वीकार करने के अर्थ में अथवा पुनर्जन्म के सिध्दांत को मानने के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग होता था.[३] ३. निरालाजी दोनों अर्थों में आस्तिक थे. बंगाल के धार्मिक वातावरण, स्वामी विवेकानन्द की वाणी तथा रामकृष्णमिशन ने इस भावना के निर्माण में विशेष योग दिया था. वेदों के प्रति निरालाजी परम आस्थावान थे, तथा उन्होंने अनेक स्थानों पर वेदका अर्थ बताते हुए उनकी आध्यात्मि व्याख्या की है,[४] तथा वेदों को विविध दृष्टियों से अंतिम प्रमाण भी माना है.[५] इस प्रकार उन्होंने पुराने अर्थ में आस्तिकता का परिचय दिया है. दूसरी ओर, ब्रह्म या ईश्वर और शक्ति या देवी के विषय में उन्होंने जो विविध काव्य लिखे हैं, उनके आधार पर उन्हे आधुनिक अर्थ में आस्तिक कहा जा सकता है.

सत्यका स्वरूप चाहे शून्य रूप में निराकार, निरूपाधि हो या अवतार रूप में साकार, सोपाधि - निरालाजी उसका साक्षात्कार तब तक संभव नहीं मानते जब तक माया रूपी अंधकार का नाश होकर ज्ञान रूपी सूर्य का उदय नहीं होता.[६] इस अज्ञान व्दारा ही दुःख का उद्भव होता है, अतः निरालाजी

---

१ - प्रस्तुत लेखक के साथ चर्चा के अन्तर्गत श्री. सु. पंत का कथन.

२ - तुल - निराला - देवी -पृष्ठ -१४.

३ - S. Chatterjee and D. Dutt- An Introduction to Indian Philosophy,1960. p. 5.

४ - निराला प्रबंध प्रतिमा पृ. २५,४१,१३९,१४४.

५ - निराला र परिमल-भूमिका पृष्ट १२-१४ गीतिका-भूमिका पृ ७.

६ - 'तोड़ना तिमिर जाल - उत्य का मिहिर द्वार' -तुलसीदास पृ.

ज्ञान का मार्ग अपनाकर दुःख का परिहार करना श्रेयस्कर समझते हैं. उनके अनुसार जब तक 'स्व' इस माया के आवर्त में जकडा हुआ है, अथवा माया के अंधकार में फंसा है, तब तक उसकी चेतना का विकास संभव नहीं है. अतः वे बादल को इस मायामय जगत पर टूट पडने का आवाहन करते हैं.[११] उनकी चेतना को संकुचित नहीं कहा जा सकती, क्यों कि उसकी व्याप्ति के अन्तर्गत समस्त राष्ट्र तथा जगत के कल्याण की कामना दृष्टिगत होती है.[१२] राष्ट्र का उत्थान करने के हेतु वे सांस्कृतिक मूल्यों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं. उनकी यह निश्चित धारणा है कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान द्वारा ही राष्ट्र को राजनैतिक, सामाजिक, एवं वैचारिक पारतंत्र्य से मुक्त किया जा सकता है.[१३] संस्कृति के इस पुनरुत्थान के हेतु वे राष्ट्रभाषा को उपयुक्त साधन मानते हैं. इस प्रकार व्यक्ति को जीवन के विशिष्ट मूल्यों के प्रति सचेत कर उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया द्वारा वे समाज का भी विशिष्ट व्यक्तित्व निर्माण करना चाहते हैं.[१४] इस कार्य को सिध्द करने के हेतु जहां एक ओर वे भारत के गौरवशाली, शक्तिदायी अतीत को प्रेरणा का स्रोत बनाते हैं,[५] वहां दूसरी ओर प्राचीन रूढियों, परम्पराओं आदि के प्रति विद्रोह कर, नवीन

---

१ - निराला - परिमल -पृष्ठ - १७८.

२ - वही - पृष्ठ -२२.

३ - निराला - गीतिका - पृष्ठ -३.

४ - निराला - अनामिका -पृष्ठ -६७-६८, परिमल-पृष्ठ २२५.

५ - निराला - अनामिका - पृष्ठ २६-५८.

मार्ग पर अग्रसर होने के लिये आवाहन करते हैं.[१] वस्तुत: निरालाजी समस्त भारत को स्वप्नावस्था से उठकर जागृत करना चाहते हैं, तथा उसे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहने का आग्रह करते हैं.[२]

निरालाजी अपने जीवन के पूर्ववर्ती काल में ही जब कि सामान्यत: लोग इस संसार के विषय में ही सोचते हैं, - मृत्यु और मोक्ष के विषय में भावात्मक और बौध्दिक धरातल पर अपेक्षाकृत अधिक जागरूक हो गए थे. उनकी प्रारंभिक रचनाओं में भी इन विषयों के संकेत स्पष्टत: मिलते हैं. निरालाजी ने, मृत्यु को प्राय: भय का विषय न मानकर, उसे आध्यात्मिक मूल्य प्रदान करते हुए, मुक्ति प्राप्त करने का साधन माना है.[३] इसी प्रकार मुक्ति को भी, केवल भौतिक जीवन से मुक्ति के रूप में स्वीकार न कर, आध्यात्मिक दृष्टि से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है. इन दो विषयों पर निरालाजी ने जिस गंभीर एवं विस्तृत चिन्तन का परिचय दिया है, वह उनकी दार्शनिकता एवं मौलिकता का प्रभाव है.

३ - महाकवि निराला की आस्था के विषय : -

३-०. उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्टत: कहा जा सकता है कि निरालाजी ने निम्नलिखित विषयों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है, तथा उनकी यह आस्था केवल भावात्मक ही नहीं है, उसमें चिंतन का

---

१ - निराला - परिमल - पृष्ठ १७७,२०० अनामिका -पृष्ठ -१२७.

२ - निराला - परिमल-पृष्ठ - १६८-२०५.

३ - वही -पृष्ठ -२०७.

प्रयोग भी है. अत: इन विषयों के ही आधार पर निरालाजी के दर्शन के स्वरूप को स्पष्ट करने का सम्प्रति प्रयास किया जा रहा है. विषय क्रम इस प्रकार रखा गया है :-

आस्तिकता : (निर्गुण ब्रह्म, मैं, सगुण ब्रह्म, शक्ति, देवी, माँ) अंधकार, माया, जीवन, सृष्टि, संसार, व्यष्टि और समष्टि, जाति, समाज, भारत, संस्कृति, सभ्यता, विज्ञान तथा जड़वाद, धर्म, हिन्दुत्व, राष्ट्र, नवीनता, मृत्यु, ज्ञान, मुक्ति.

३-१ आस्तिकता : जैसा कि पहले बताया जा चुका है, निरालाजी ने प्राचीन एवं आधुनिक दोनों दृष्टियों से अपनी आस्तिकता का परिचय दिया है. परंतु निरालाजी के आस्तिक्य के विषय में विचार करने से पूर्व 'आस्तिक्य' शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करना आवश्यक है.

आस्तिकता या आस्तिक्य, मूलत: 'अस्ति' शब्द का भाववाचक है, अर्थात् आस्तिक्य उस व्यक्ति का एक भाव है जो किसी 'अस्तित्व' में विश्वास करता हो. परंतु वस्तुत: आस्तिक शब्द इस सामान्य अर्थ का वाचक न होकर निम्न लिखित अर्थों का वाचक है.

---

१) आस्तिक्य उन व्यक्तिओं का एक भाव है जो वेद को अंतिम अस्तित्व (परम सत्य) मानते है, और वेद को ही उस अस्तित्व का अंतिम प्रमाण मानते है.

२) आस्तिक्य उन व्यक्तियों का एक भाव है जो ईश्वर के अस्तित्व को मानते है, तथा ईश्वर को परम तत्व या अंतिम अस्तित्व के रूप में स्वीकार करते है.

उक्त दो विधानों को निम्नलिखित रूप में और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है -

वेद के दो अर्थ प्रसिध्द है - १ - ग्रंथ विशेष, २- ज्ञान विशेष. अत: वेद के प्रति भाव के दो अर्थ हुए -१- ग्रंथ विशेष को अंतिम प्रमाण स्वीकार करना. यह भाव परम्परागत है. २ - ज्ञान को अंतिम प्रमाण स्वीकार करना. यह भाव अपेक्षाकृत आधुनिक है.

इसी प्रकार ईश्वर को भी दो रूपों में समझा जाता है. १- निर्गुण ब्रहम, २- सगुण ब्रहम. ईश्वर के प्रति भाव के दो अर्थ हुए. १- निर्गुण ब्रहम के अस्तित्व को अंतिम सत्यके रूपमे स्वीकार करना. २- सगुण ब्रहम के अस्तित्व को अंतिम सत्यके रूप मे स्वीकार करना.

निरालाजी ने उपरोक्त चारों प्रकार के आस्तिक्य का परिचय दिया है, यह तथ्य उल्लेखनीय है. अतएव इस दृष्टि से वे जितने प्राचीन प्रमाणित होते हैं उतने ही आधुनिक भी सिध्द होते हैं. साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि हिन्दी के महाकवि तुलसीदास के समान उन्होंने भी उक्त चारों प्रकार के आस्तिक्यों का समन्वयात्मक रूप अपने काव्य द्वारा प्रस्तुत किया है.

निरालाजी ने वेदों के अतिरिक्त निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी आस्तिकता का परिचय जिस रूप में दिया है उसका अनुशीलन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है.

निरालजी के अनुसार संसार के मनुष्यों को मूल रूप से दो दलों में विभक्त किया जा सकता है. एक दल बहिर्मुखी है जो जीवन और जगत के बाहरी स्वरूप की ओर आकर्षित होता है, एवं भोग उसका लक्ष्य है, और अपूर्णता उसका मूल लक्षण.[1] दूसरा दल अन्तर्मुखी है, जो जीवन और जगत के सूक्ष्म, भीतरी स्वरूप की ओर अभिमुख होता है, एवं शान्ति को प्राप्त करना उसका लक्ष है तथा पूर्णता उसका मूल लक्षण .[2] भीतर की ओर मुड़ने की यह प्रक्रिया ही ब्रह्मपद की प्राप्ति का प्रयास है.[2] प्राचीन काल से, इस भीतरी तत्व को पहचान कर, ब्रह्म जगत की ओर मुड़ने की प्रवृत्ति के महत्व का विचार और विश्लेषण भारतीय दर्शनों मे हुआ है.[3]

आत्मा की पूर्णावस्था में 'स्वे' और 'पर' के भेद का परिहार हो जाता है. जैसे निरालाजी ने 'मैं' और 'तुम' कहा है.[4] - तथा एकमात्र ब्रह्मत्व ही- ----- रह जाता

---

१ - निराला -संग्रह- १६३ पृष्ठ - ३-४.

२ - वही - पष्ठ -७.

३ - तुलनीय ' Ruth Reyna-The Concept of Maya From Vedas to 20th -Century 1962-p. 51.

४ - तुलनीय ऽ कविता 'तुम और मैं - परिमल.

है।[1] इस स्थिति को प्राप्त करते ही मनुष्य में परिवर्तन होता है,वह ब्रह्म में तदाकार हो जाता है,तथा उसका यह पूर्णता प्राप्त करना ही अभावों से मुक्त होकर[2] शान्तिपूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना है[3]। निरालाजी के अनुसार ब्रह्मत्व को प्राप्त करना ही मनुष्य का धर्म है[4]।

निरालाजी ने ब्रह्म के स्वरूप को `मैं`, `तुम`, और `वह` द्वारा स्पष्ट किया है।[5] `मैं` को समझाने के लिये उन्होंने अनेक स्थानों पर महाकवि गालिब की निम्नलिखित उक्ति का आधार लिया है -

`न था कुछ तो खुदा था,कुछ न होता तो खुदा होता,
डुबोया मुझको होने ने,न होता मैं तो क्या होता।`[6]

इस उक्ति का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि ब्रह्म का स्वरूप व्यष्टि और समष्टि में प्रकाशित हो रहा है,और क्योंकि यह `मैं` व्यष्टि और समष्टि दोनों को प्रत्यक्ष करता है अत: `मैं` ही ब्रह्म है,जो स्वयं अपने आप में स्वयंप्रकाशजन्य चेतना है[7]। होने अर्थात् संसार के ज्ञान ने सीमित कर दिया है,संसार में फंसा दिया है, `मैं` को इस संसार ने जकड़ रखा है,यदि यह बंधन न होता तो `मैं` निश्चित ही खुदा या ब्रह्म होता। उक्त बोधमय,ज्ञानमय `मैं`

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- २८

२- वही - पृष्ठ- ६६

३- वही - पृष्ठ- ५,७

४- वही - पृष्ठ- ७०

५- `तुम` और `मैं` - परिमल , `वह` - परिमल- पृष्ठ- २५०

६- निराला- चयन- पृष्ठ- ६६, प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- ३३,संग्रह- पृष्ठ- १३१

७- Chatterjee & Datta - An Introduction to Indian Philosophy - P. 203

संसार की ससीमता से परे जाकर असीम होजाता है, इसीलिये वह विराट या अगणित से सम्बद्ध हो जाता है. इस तथ्य को समझाने के लिये निरालाजी ने श्रीकृष्ण का उदाहरण दिया है.[1] आशय यह कि निरालाजी के अनुसार ज्ञान ही ब्रह्म है.[2]

निरालाजी ने ब्रह्म के दो रूपों[3] का उल्लेख किया है. -१ - निर्गुण या अद्वैत ब्रह्म, २- सगुण या द्वैत ब्रह्म. यद्यपि उन्होंने ब्रह्म के उक्त दोनों रूपों की महत्ता को स्वीकार है,[4] तथापि उनके अनुसार सगुण ब्रह्म की ओर अभिमुख होना अधिक श्रेयस्कर है.

ब्रह्म अपनी इच्छा के आधार पर सगुण रूप धारण करता है, अत: इस प्रकार से अपने आप को इच्छाजन्य रूप में व्यक्त करना ही उसका कम्पन है.[5] वह जब पूर्ण अव्यक्त रहता है तब नहीं कांपता.अत: शक्ति-संवलित-

-ब्रह्म-

१- निराला - प्रबन्ध-प्रतिमा - पृष्ठ -२४६, प्रबन्ध-पद्म-पृष्ठ ५६.

२- निराला - प्रबन्ध-प्रतिमा -पृष्ठ-१२६.

३- तुल: निर्गुण रूप -प्रा.उ.३-१४-२, श्वेताश्वतर उ.६-११,
सगुण रूप- छा.उ. ३-१४-२.

४- निराला -संग्रह - पृष्ठ १८-१६, तुल: परिमल-पृष्ठ २४३.

५- निराला - परिमल पृष्ठ ११२, तुल: कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेत:
प्रथमं यदासीत ऋग्वेद, १०-१२६-४.

६- निराला - प्रबन्ध-प्रतिमा - पृष्ठ -१४५.

वह शून्य तत्व[1] जब कांपता है तब उसकी शक्ति का परिचय होता है,जब नहीं कांपता तब उसकी शक्ति का ज्ञान नहीं होता ।[2]

ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये निरालाजी ने अन्य दार्शनिक शव्दावली का भी प्रयोग किया है । उनके अनुसार आकाश ही शब्द तत्व है,[3] तथा जिस प्रकार यह आकाश अनादि है,उसी प्रकार प्रत्येक शव्द भी अनादि है। यह विश्व,शव्द की सृष्टि के लिये उत्तरदायी है,क्योंकि विश्व भी अनादि है।[4] शव्द का यह अनादि रूप ब्रह्म के अनादि रूप से सम्बद्ध है । अतः यह आकाश, शव्द या अक्षर ही ब्रह्म है ।[5]

निरालाजी के अनुसार भारत के ऋषियों एवं मनीषियों ने दर्शन

१- निराला- संग्रह- १५४ , प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ- २२७

२- निराला- प्रबन्ध-पद्म- पृष्ठ- १८

३- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १००

४- निराला- प्रबन्ध-पद्म- पृष्ठ- ५६

५- तुल: आकाश-ब्रह्म : `आकाशशरीरं ब्रह्म`- तैतिरीयोपनिषद्,षष्ठ अनुवाक

आ) `सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त
आकाशम्प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाश:
परायणाम ।`- छां०उ०, १-९११

इ) `आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्विहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म ।`
- छां०उ०, ८-१४-१

अक्षर-ब्रह्म: `यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ।`
- मुण्डकोपनिषद्, १-७

द्वारा जिस `सत्य` का उद्घाटन किया है वह अमर, अपाय, अगम, अगोचर है तथा उसे उन्होंने कर्ता, नियंता माना है,[1] तथा उसे ऋषियों ने `कविर्मनीषी परिभू: स्वयंभू:` कहा है।[2] वस्तुत: यह `सत्य` एक ही है, परंतु इसके नाम तथा परिणाम भिन्न-भिन्न माने गये हैं।[3]

योग की प्रक्रिया द्वारा भी निरालाजी ने ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट किया है। पौराणिक कथाओं के रूपकों का रहस्योद्घाटन करते हुए उन्होंने बताया है कि वस्तुत: प्रयाग के संगम में अदृश्य सरस्वती ब्रह्म स्वरूपा है, तथा उस गंगा-यमुना के संगम में स्नान करनेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है। इस आशय को स्पष्ट करने के लिये योग की शब्दावली के संदर्भ में निरालाजी ने निम्नलिखित प्रमाण दिया है -

`इडा गंगेति विज्ञेया पिंगला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वतीं विधात् प्रयागादिसमस्तथा ।।`

अर्थात्, इडा (गंगा) और पिंगला (यमुना) जहां मिलती हैं वहां स्नान करनेवाला जब तीसरी-सुषुम्ना (सरस्वती) को भी मिला देता है, उस संगम स्थल या ज्ञानमय कोष पर पहुंचकर उसे अमृतत्व प्राप्त होता है,[4] तथा वह साधक ब्रह्म-पद पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

इस प्रकार विविध शब्दावली तथा ~~दृष्टिको~~ दृष्टिकोणों का आधार लेते हुए अंत में निरालाजी ने ब्रह्म का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया है- ब्रह्म अत्यन्त सूक्ष्म है, व्यापक और विराट है, अनिर्वचनीय है।[5] परंतु

१- मुं०उ०, १-१-६ , २- निराला- प्रबन्ध-पद्म- पृष्ठ- ६६-७०

३- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ- ४३ , तुल: `एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति`- ऋ०सं०अष्ट २,अ०३व०२३मं०४६ , तुल: `एक रूपं बहुधा य: करोति`- कठोपनिषद्, द्वितीय वल्ली, १२,

४- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा-पृष्ठ-७२-७३, ५- तुल: मुं०उ०, १-१-६, कठो० १-३-१५

उसे भौतिक रूप(बहिर्मुखी दृष्टि)में देखना असंभव है,उसे तो सूक्ष्मतम,आध्यात्मिक (अंतर्मुखी दृष्टि),दार्शनिक अनुभव द्वारा वृहत्तर सच्चिदानन्द रूप में समझा जा सकता है ।[1] शब्द तथा शरीर के भीतर भी ब्रह्म-तत्व ही विद्यमान है,ओंकार[2] के बिन्दु से ही शब्द की उत्पत्ति हुई है,और वह बिन्दु ही पूर्ण ब्रह्म है । जैसे शब्द की समाप्ति इस बिन्दु में होती[3] है,वैसे ही शरीर भी इसी ब्रह्म से निकलकर ब्रह्म में ही अवसान पाता है ।

ब्रह्म-प्राप्ति की स्थिति में जिस आनन्द की उपलब्धि होती है[4] उसकी ओर भी निरालाजी ने सप्रमाण संकेत किया है ।[5] इस आनन्द[6] के साथ साधक का चिरकालिक संयोग हो जाता है,तथा वह`अहं ब्रह्मास्मि`,एवं`सर्वं खल्विदं ब्रह्म`[7] की अनुभूति स्वयं करने लगता है । परंतु वस्तुत: यह आनन्द तथा उसका नशा अज्ञानजन्य नहीं परंतु ज्ञानजन्य होता है,इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने[9] के लिये निरालाजी ने श्री रामकृष्ण परमहंस के वचनों का उल्लेख किया है ।

१- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ- ३१, संग्रह- पृष्ठ- ११

२- तुल: `सत्यं ज्ञानं सच्चिदानन्दरूपं`- शुकरहस्योपनिषद, द्वितीय खण्ड
तुल: The Complete Works of Swami Vivekananda - Vol. V - P. 385

२- निराला - प्रबंध प्रतिमा - पृ - ६८

३- निराला-प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ-६८, तुल: मु०उ० २-१-१, तुल:

४- तुल: `रसो वै स: । रसं ह्येवायं लब्ध्वा नन्दी भवति`।-तैतिरीयोपनिषद, २-७, `आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् ।`-तैतिरीयोपनिषद,षष्ठ अनुवाक , `आनन्द स्वरूप ब्रह्म:`,`विज्ञानमानन्दं ब्रह्म`- बृहदारण्यक उ०,३-९-२८

५- निराला- चयन- पृष्ठ-१००-१०१

६- बृहदारण्यक उपनिषद्,१-४-१०, ७- छान्दोग्य उपनिषद्,३-१४-१

८- तुल: पंचब्रह्मोपनिषद्, २९-३० , ९- निराला-संग्रह-पृष्ठ- ५

वैदिक साहित्य तथा निर्गुण ब्रह्म के प्रति अपनी निष्ठा एवं आस्तिकता का प्रमाण जिस प्रकार निरालाजी ने उक्त विचारों के अंतर्गत दिया है, उसी प्रकार अपनी काव्य रचनाओं द्वारा भी उन्होंने इस निष्ठा की पुष्टि की है। अत: निरालाजी के काव्य में उनकी आस्तिकता का प्रतिफलन किस रूप में हुआ है यह निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

निरालाजी ने बहिर्मुखी और अंतर्मुखी दृष्टि, तथा भीतर ब्रह्म-पद की प्राप्ति का इस रूप में वर्णन किया है -
'बाहर मैं कर दिया गया हूं, भीतर, पर, भर दिया गया हूं'[1]। ब्रह्म का रूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है -

'ऊपर वह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है।'[2]

'मैं' की चेतना द्वारा ही ब्रह्म की व्यापकता, तथा प्रत्येक जीव में उसके अंश का अनुभव होता है -

'मैंने 'मैं' शैली अपनाई--- देखा दु:खी एक निज भाई---
लगाया उसे गले से हाय'[3]

सृष्टि के कर्ता ब्रह्म को उन्होंने आदि कवि के रूप में वर्णित किया है -[4]

स्वामी विवेकानन्द द्वारा रचित कविता-'गाइ गीत सुनाते तोमाय'- के अनुवाद द्वारा निरालाजी ने 'मैं' और 'तुम' की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, अहं के 'मैं' से ब्रह्म स्वरूप 'मैं' के भेद का स्पष्टीकरण किया है-

'विकसित फिर होता मैं----[5]
'एक, होता अनेक, मैं---------[6]

१- निराला- बेला- गीत-३५ , २- वही , ३--वही
३- निराला- परिमल- पृष्ठ- १२४ , ४- निराला-अनामिका-पृष्ठ- १०२
५- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १०१
६- वही - १०३,

प्रत्येक जीव में दैवी शक्ति का निवास है,वह ब्रह्म ही है,इस तथ्य को बताते हुए उन्होंने अज्ञान और मोह से घिरी हुई भारतीय जनता को उद्‌बोधित कर कहा है -

'मुक्त हो सदा तुम ----तुम हो महान्,तुम सदा हो महान्--
ब्रह्म हो तुम----'[1]

'कण' समान सूक्ष्म वस्तु में भी ब्रह्म का रूप देखकर उसे आत्मा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए,नाना रूपमय जगत और ब्रह्म के अद्वैत का निरूपण किया है-

'तुम हो अखिल विश्व में----
यद्यपि देख रहा हूं तुममें भेद अनेक --'[2]

इसी प्रकार आत्मा के प्रतीक के रूप में कली का परम तत्व या ब्रह्म के साथ अद्वैत संबंध स्थापित करवाया है ।[3] इसके अतिरिक्त शून्य तत्व के रूप में आधार पर भी निरालाजी ने ब्रह्म का स्वरूप निरूपित किया है ।[4] समस्त विश्व में सच्चिदानन्द ब्रह्म की जो चेतना प्रवाहित है,उसके निराकार तथा साकार रूप को निम्नलिखित गीतों में निरूपित किया है -

'कौन तम के पार रे (कह)---'[5]
' जग का एक देखा तार ------'[6]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २०४-२०५
तुल: छां०उ०, ६-८-७, ६-६-४, ६-१४-३
२- निराला- परिमल-पृष्ठ- १७१, तुल: 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' - छां०उ०,३-१४-१६
तुल: 'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायांनिहितो स्य जन्तो: । -
श्वेताश्वतर उ०,३-२०, तुल: The complete works of Swami Vivekananda. Vol-II p.237
३- निराला- परिमल- पृष्ठ-१९२-१९३
४- निराला-अनामिका-पृष्ठ-१०२
५- निराला- गीतिका- गीत सं०१२,
६- वही- गीत सं०२२

अहंकार के 'मैं' को पार करने के पश्चात् ही 'मैं' को आनन्द की उपलब्धि होती है ।[1] इस तथ्य का निरूपण निरालाजी ने निम्न रूप में किया है -

'ज्योतिर्मय चारों ओर परिचय सब अपना ही
स्थित मैं आनन्द में चिरकाल
जाल मुक्त । ज्ञानाम्बुधि वीचि रहित ।---[2]

यह स्थिति उन्होंने जगमगाते प्रभात के अनुभव सी बताई है ।[3]

उपरोक्त रूप में, निरालाजी की वेद तथा निर्गुण ब्रह्म विषयक आस्था या आस्तिकता का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् सगुण ब्रह्म विषयक उनकी आस्तिकता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है । परंतु इससे पूर्व यह प्रश्न विचारणीय है कि उक्त निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म के प्रति निरालाजी का दृष्टिकोण किस प्रकार का रहा है । इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ब्रह्म के दोनों रूपों के प्रति निरालाजी का दृष्टिकोण (attitude) मूलत: और अंतत: रहस्यवादी रहा है । वस्तुत: रहस्यवाद, निरालाजी की समस्त चेतना का एक व्यापक आधार कहा जा सकता है । यहां तक कि उनका सामाजिक एवं राष्ट्रीय चिन्तन भी इस रहस्यवादी आस्तिक्य से मुक्त नहीं है। उक्त तथ्य को समझने के लिये स्वयं निरालाजी की मान्यताएं एवं स्पष्टताएं सहायक सिद्ध हो सकती हैं ।

निरालाजी के अनुसार समस्त आर्य-संस्कृति रहस्यवाद पर प्रतिष्ठित है ।[4] समस्त आर्य-साहित्य का मूल रहस्यवाद है ।[5] भारतीय महाकाव्य

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २५२

२- वही - पृष्ठ- २६२

३- वही - पृष्ठ- १६५

४- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ- ६१

५- वही - पृष्ठ- ५६

रहस्यवाद के ही ग्रंथ हैं,समस्त ऋषि-कवि रहस्यवादी थे। संक्षेप में निरालाजी रहस्यवाद को ही सर्वोच्च साहित्य स्वीकार करते हैं।[१] इस दृष्टि के आधार पर निरालाजी के अनुसार छायावाद भी रहस्यवाद ही है,दोनों पर्यायवाची या अभिन्न हैं। इस तथ्य की ओर निरालाजी ने अनेक स्थानों पर संकेत किया है।[२] वे जिस छायावाद के उन्नायक थे उस श्रेणी के कवियों का मूल लक्ष्य,उनके अनुसार,सत्य का अन्वेषण था।[३] `वर्तमान धर्म` निबन्ध द्वारा उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि पौराणिक रूपकों या छायाओं के परे जो सत्य है,वही छायावादी कवियों का मूल लक्ष्य है।[४] उनके अनुसार उक्त छायाओं के आधार पर सत्य को प्राप्त करनेवाले छायावादी हो सकते हैं,परंतु[५] छाया उनकी वाद नहीं,सत्य ही उनका वाद है,अत: वे सत्यवादी हैं। वस्तुत: सत्य, ब्रह्म रूप ही है,अत: वे ब्रह्मवादी कवि सिद्ध हुए माने जा सकते हैं।

आशय यह कि उक्त अनुशीलन के आधार पर निरालाजी की आस्तिकता का दृष्टिकोण,रहस्यवादी सिद्ध होता है। वस्तुत: रहस्यवादी आस्तिक्य उनके व्यक्तित्व का एक अन्यतम लक्षण माना जा सकता है।कारण यह कि वे मूलत: भावग्राही कवि हैं,और रहस्यवाद[६] में `भाव` का तत्व अनिवार्य तथा प्रमुख रूप से विद्यमान रहता है। अतएव यहां संक्षेप में रहस्यवाद

१- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ- ६१

२- वही - पृष्ठ- १६६-१६६, संग्रह- पृष्ठ- १५४, चयन- पृष्ठ- १७६

३- निराला- प्रबन्ध-प्रतिमा- पृष्ठ-

४- वही - पृष्ठ- ५६

५- वही - पृष्ठ- ५६

६- Mainkar T. G.- Mysticism in Rgveda - P. 4

का स्वरूप स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

विद्वानों के अनुसार रहस्यवाद, एक स्वभाव है।[१] भिन्नता में अभिन्नता के दर्शन करना इस स्वभाव का मूल तत्व है। रहस्यवाद का उद्‌गम और अंत दोनों एकसाथ इस तत्व में अंतर्भूत हैं। यदि ऋग्वेद में इस मूलभूत एकता के सत्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार हुई है- 'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति' - तो श्रीमद् भगवद्‌गीता में 'तेजोंऽशसंभवम्'[२] के रूप में हुई है। उक्त तथ्य की पुष्टि गीता में इस प्रकार की गई है -

'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥'[३]

रहस्यवाद के अंतर्गत दो तत्वों का योग देखा जा सकता है - १- बौद्धिक विचार, १-(Cognition) २- भाव (Emotion)। प्रथम तत्व बौद्धिक या 'ज्ञानोन्मुख रहस्यवाद' में परिणत होता है, तथा दूसरा तत्व सगुण ईश्वर की ओर अभिमुख होता हुआ, 'भावोन्मुख रहस्यवाद' में परिणत होता है। प्रथम प्रकार के रहस्यवाद का संबंध 'सत्य' के साथ रहता है, तथा दूसरे प्रकार के रहस्यवाद का 'सौंदर्य' एवं 'पवित्रता' के साथ।[४] इस प्रकार रहस्यवाद में सत्य, सौंदर्य और पवित्रता अनुस्यूत रहते हैं।

उपरोक्त विभाजन के आधार पर विचार किया जाय तो भावोन्मुख रहस्यवादी, अर्थात् प्रपत्तिवादी या समर्पणवादी, भावों को अधिक प्रभावित करते हैं, और ज्ञानोन्मुख रहस्यवादी, अपनी मान्यताओं को दार्शनिक रूप

१- Mainkar T. G. - Mysticism in Rgveda - P. 2

२- गीता- १०-४१

३- गीता- ६-२९

४- Mainkar T. G. - Mysticism in Rgveda - P. 118-119

में प्रस्तुत करते हुए बुद्धि को विशेष प्रभावित करते हैं। परंतु भावोन्मुख रहस्यवाद में भाव या समर्पण की प्रधानता होते हुए भी विचार का नितांत अभाव नहीं होता, बल्कि वे गौण होते हैं। इसी प्रकार ज्ञानोन्मुख रहस्यवाद में वैचारिक आग्रह होने पर भी भावना या श्रद्धा का गौण स्थान अवश्य होता है।[१]

निरालाजी के काव्य में दोनों प्रकार के रहस्यवाद का समन्वय देखा जा सकता है। एक ओर उन्होंने उस विराट, पूर्ण तथा सर्वव्यापी सत्य की गरिमा को दार्शनिक धरातल पर अभिव्यक्त किया है, तो दूसरी ओर उस विराट के आगे अपनी लघुता, पूर्ण के आगे अपनी अपूर्णता, गरिमायुक्त के आगे अपनी दीनता को व्यक्त करते हुए श्रद्धा, भक्ति और समर्पण का भाव प्रकट किया है। आशय यह कि उन्होंने ज्ञानमय एवं भावमय दोनों रूपों में अपनी अ आस्तिकता का परिचय दिया है। उनका यह द्विमुखी रहस्यवाद काव्य में किस प्रकार रूपांतरित हुआ है, यह निम्नलिखित अध्ययन द्वारा देखा जा सकता है।

ऋग्वेद के ऋषि कवियों की रहस्यवादी चेतना की अभिव्यक्ति सूर्य के प्रतीक द्वारा अत्यंत विशिष्ट ढंग से हुई है। ऋग्वेद के कवियों ने सूर्य में ही सौंदर्य, हिरण्य और गंधर्व के दर्शन किये, उसी में ऋत को देखा, सूर्य को ही उन्होंने मूल परिभ्रमणकारी आत्मा के रूप में देखा, उसकी पत्नी के रूप में कल्पना की, और उसे ही व्यष्टि (Human-Self) कहा। आशय यह कि यह सुवर्णमय देवता ही उनकी दृष्टि का केन्द्र रहा, उनकी प्रेरणा का स्रोत तथा नैतिक व्यवहार का मार्गदर्शक रहा, उन्होंने जीवन का रक्षक और पालक भीउसे ही स्वीकार किया। अतः एक दृष्टि से भारतीय रहस्यवाद के इस

१- Mainkar T. G. - Mysticism in Rgveda - P. 39

रूप को `सूर्य-रहस्यवाद` (Sun-Mysticism) कहा जा सकता है।[१]

वैदिक ऋषि कवि सूर्योदय से अत्यंत प्रभावित हुए थे,तथा प्रकाश के उस प्रपात से अभिभूत होकर उन्होंने[२] आलोक या प्रकाश के देव के रूप में सवितृ (सूर्य) की कल्पना की। परवर्ती भारतीय दर्शन साहित्य में प्रकाश की याचना या ज्योति की तीव्र आकांक्षा को दिया गया आध्यात्मिक स्वरूप एवं महत्व देखा जा सकता है।[३]

निरालाजी ने भी उक्त वैदिक कवियों के समान सूर्य के प्रतीक द्वारा अपनी रहस्यवादी चेतना को प्रकट किया है। उन्होंने `ज्योति` की कामना भी अत्यंत व्यापक एवं उदात्त रूप में व्यक्त की है। निरालाजी के अनुसार सूर्य,आकाश की आत्मा है। उसका प्रकाश जीवों में अपार्थिव,स्वर्गीय चेतना भरकर उन्हें भूमा के प्रशस्त ज्योतिर्मण्डल में ले आता है। उस ज्योति:-पुंज को निराकार ब्रह्म के रूप में कल्पित करते हुए वे यह मानते हैं कि उसके प्रकाश द्वारा ही सुषुप्त प्रकृति जागृत होती है,तथा वह ब्रह्म अपने अनेक रूपों को धरातल पर प्रकट करता है,फलस्वरूप हृदय का अंधकार नष्ट होकर प्रकाश-पुंज का प्रवेश होता है,और वह अपनी ज्योति के जगमग प्रवाह से जीवों को स्वाभाविक स्वतंत्रता प्रदान कर,उनके हृदय में भरकर ब्रह्मत्व प्रदान करता है। मोह का नाश होता है,तथा जीव पुलकित होकर आनन्द में लीन हो जाता है।[४]

ज्योति द्वारा निर्गुण,निराकार ब्रह्म की कल्पना करते हुए उन्होंने ज्योति के प्रवाह को अरूप कहा है। जड़ में इसी चैतन्य का संयोग है। इसके प्रत्येक पद पर,जीव और जगत इसके अज्ञात स्पर्श को प्राप्त करता है,तभी

१- Mainkar T. G.- Mysticism in Rgveda- P.66

२- Ibid- P. 66

३- Ibid- P. 68

४- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- १५६

जीव को अपनी सत्ता का निश्चय होता है। जीव में स्वत: विचरण की शक्ति नहीं है, वह पृथ्वी के साथ उसी अलक्ष्य के संकेत से महाकाश की परिक्रमा करता है। जीव हर सांस में उसके स्पर्श का अनुभव करता है।[1]

सूर्य तथा ज्योति के प्रति निरालाजी की उक्त रहस्यवादी भावना उनकी काव्य-पंक्तियों में इस प्रकार प्रकट हुई है-

सूर्य के प्रतीक का अत्यंत सुष्ठु रूप निरालाजी ने 'तुलसीदास' में प्रस्तुत किया है। सूर्य के अस्त द्वारा भारत की आध्यात्मिक चेतना का पतन बताकर, भारतीय जीवन की जड़ता का चित्रण किया है। अंत में सूर्य के उदय के साथ पुन: उस आध्यात्मिक जागरण तथा चैतन्य के उन्मेष का संकेत किया है।

'तुलसीदास' के आरंभ में उन्होंने सूर्य को जीवनदायी, तथा शीतलता प्रदान करनेवाला कहा है।[2] उसके अस्त के साथ भारतीय जीवन को अंधकार के गर्त में डूबता हुआ बताया है। इसमें से[3] बाहर निकलकर किरणों के ज्योतिर्मय घर, ज्योति:स्वरूप स्वयं परब्रह्म राम[4], अर्थात् सत्य के मिहिर द्वार को प्राप्त करने का वे आवाहन करते हैं। अंत में रत्नावली द्वारा तुलसीदास की चेतना को जागृत कर, (उन्होंने) ने सूर्योदय के प्रतीक द्वारा तुलसीदास (जीव) में ज्योति के प्रपात का प्रवेश बताते हुए अंधकार, अविद्या,[5] जड़ता का नाश तथा प्रकाश, ज्ञान और चेतना के उन्मेष का वर्णन किया है। सूर्य तथा सूर्योदय का आध्यात्मिक

१- निराला- प्रबंध-पद्म-पृष्ठ- १६०

२- निराला- तुलसीदास- पृष्ठ- ११

३- वही - पृष्ठ- ३२

४- वही - पृष्ठ- ३४

५- वही - पृष्ठ- ५७

दृष्टि से अन्य स्थानों पर भी वर्णन किया है ।[1]

'सरोज स्मृति' में सरोज की मृत्यु को 'ज्योति:शरण' के रूप में प्रस्तुत करते हुए निरालाजी ने ब्रह्म-रूप में ज्योति की कल्पना की है ।[2] उनके अनुसार जिस ब्रह्म-स्वरूप ज्योति के चुंबन या स्पर्श[3] से जगत की स्थिरता में गति फैलती है, जड़ के साथ चेतन का संयोग होता है, वह निराकार है -

१- 'रवि की छवि के प्रभात, ज्योति के अदृश्य गात ।'

२- 'ज्योति में न लगती रे रेणु, श्रुति कटु स्वर नहीं वहां[4]
वह अछिद्र वेणु

इस सर्वव्यापी ज्योति के आगे माया भी कांपती है -

'देखा जहां वहीं है ज्योति तुम्हारी
सिद्ध। कांपती है यह माया सारी'[5]

ज्ञान द्वारा इस माया का अंधकार दूर करने पर ही ज्योतिर्गठित ब्रह्म का हृदय में दर्शन होता है, अथवा जीव को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है -

'लखोगे, उर-कुंज में निज कंज पर निर्भार
अखिल-ज्योतिर्गठित छवि, क्व पवन-तम-विस्तार'[6]

निरालाजी ने देवी या मां रूप में भी अनेक स्थानों पर ज्योति

१- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ६६, परिमल- पृष्ठ- ३८, गीतिका-पृष्ठ- गीत: ६६, अर्चना- पृष्ठ- ३२, आदि

२- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ११७ , ३- ३- परिमल- पृष्ठ- २१२

४- निराला- अर्चना-पृष्ठ- ६८, गीतिका-गीत: ५६

५- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ५३

६- निराला- गीतिका-गीत: ४८

की कल्पना की है,[1] और उसीके प्रति,अंधकार को चीर कर ज्योति प्रदान करने की प्रार्थना की है -

१- "जग को ज्योतिर्मय कर दो । प्रिय कोमलपदगामिनि ---

२- "काट अंध उर के बंधन-स्तर,बहा जननि,ज्योतिर्मय निर्झर--"[2]

एक अन्य गीत मेंनिरालाजी ने,ज्योति के अत्यंत व्यापक स्वरूप का वर्णन करते हुए उसकी संपूर्ण चेतना का वर्णन`ज्योतिगान` के रूप में किया है ।[3]

भावोन्मुख रहस्यवाद के अंतर्गत निरालाजी ने ब्रह्म के सगुण,साकार,ईश्वर रूप के प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्ति का परिचय देते हुए उस परम तत्व के साथ एकाकार होने की कामना का विनयपूर्वक निवेदन किया है । निरालाजी में भक्ति-भावना के अंकुर बाल्यकाल से विद्यमान थे ।[4] बंगाल की धर्म-प्रवण भूमि में रहकर स्वभावत: ब्रह्म की शक्ति के साकार रूप,देवी के प्रति उनके हृदय में भक्ति का संचार हो गया था । आगे रामकृष्ण (मिशन) के सत्संग तथा स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा से प्रभावित होने पर वह भावना और दृढ़ हो गई । इसके साथ ही श्रीराम और श्री हनूमान के प्रति भी भक्ति का उन्मेष निरालाजी में बाल्यकाल से हो गया था ।[5] आगे चलकर गो०तुलसीदास तथा उनके रामचरित मानस के परिचय एवं स्वाध्याय से वह भावना भी दृढ़-मूल हो गई । वस्तुत: उनकी[6] भक्ति-चेतना में देवी,राम,तथा हनूमान तीनों का समाहार हो गया था । यही कारण है कि निरालाजी के काव्य में

१- निराला- परिमल- पृष्ठ-२३, गीतिका-गीत:३, नये पत्ते- पृष्ठ- ६५
अर्चना- पृष्ठ- १२४ आदि

२- निराला- परिमल- पृष्ठ- २३, गीतिका-गीत: ३

३- निराला- आराधना- गीत:५४

४- निराला- देवी- पृष्ठ- १५

५- वही - पृष्ठ- १७-१८

६- वही - पृष्ठ- १८

आरंभ से अंत तक ,अर्थात् `अनामिका` से `परिमल` तक या से `गीतगुंज` तक ईश्वर एवं देवी के प्रति समर्पण या प्रपत्ति-भाव से युक्त प्रार्थना अथवा विनय-गान देखे जा सकते हैं,यद्यपि `मां` के उदात्तीकृत रूप देवी या शक्ति के प्रति उक्त प्रकार की भावना विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई है । इसके मूल में उनके ,अपनी स्व० माता तथा पत्नी के प्रति उदात्त एवं पवित्र भाव कारणभूत हैं । निरालाजी के लिये मां तथा पत्नी सदैव सर्वाधिक प्रिय एवं पूज्य रहीं। उन्होंने अनेक स्थानों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपनी पत्नी को शक्ति या देवी के रूप में कल्पित किया है ।[1] अपनी पत्नी को ही उन्होंने रहस्यवादी रचनाओं का श्रेष्ठ संग्रह `गीतिका`,समर्पित किया है,जिसमें मां या देवी के प्रति,उनके सभी संकाव्य-संग्रहों की तुलना में,अधिक रचनाएं संकलित हैं । कहा जा सकता है कि इस संग्रह की रचनाओं में मां या देवी का जितना वैविध्यपूर्ण,सशक्त एवं उदात्त वर्णन हुआ है,उतना अन्य किसी काव्य-संग्रह में नहीं । अत: उक्त विवेचन के संदर्भ में,निरालाजी के `शक्ति` विषयक विचारों का अनुशीलन करना यहां उपयुक्त होगा ।

निरालाजी ने शास्त्रों का आधार लेते हुए शून्य और शक्ति में अभेद माना है । शक्ति का अस्तित्व,विकास देखने या करने में है,यद्यपि अंतर मात्र इतना है कि जब शून्य में स्थिति या स्थिरता है,तब शक्ति का ज्ञान नहीं होता क्योंकि उस समय शून्य नहीं कांपता,और जब वह कांपता है,तब उसका ज्ञान नहीं होता,शक्ति का परिचय होता है ।[2] इस प्रकार शक्ति,विश्व को चलाती है,[3] क्योंकि एक ही शक्ति- व्यक्ति,देश तथा विश्व की ~~चलाने~~ शक्ति में सम्मिलित है ।[4] `वर्तमान धर्म` निबंध में रूपकों का रहस्य समझाते

१- निराला- तुलसीदास- पृष्ठ- ५२,५४, देवी- पृष्ठ- २०

२- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- १८

३- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ३०

४- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- १९

हुए उन्होंने बताया है कि ज्ञान और शक्ति दोनों का परिणाम अनादि है, अत: दोनों बराबर हैं।[1] आशय यह कि शून्य की तरह ज्ञान को ब्रह्म मानकर उन्होंने ब्रह्म और शक्ति का अभेद स्पष्ट किया है। उक्त निबंध में श्री सीता-जी कन के जन्म और पाताल प्रवेश का रहस्य उद्घाटित करते हुए इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया है कि सीताजी के जन्म के रूप में शक्ति के जन्म का संकेत है और पाताल प्रवेश में उसी महाशक्ति का, लीला के पश्चात् अपने आधार चक्र, मूलाधार चक्र में जाने की कल्पना है।[2]

अनेक शक्ति-तरंगों में से कोई सामान्य (common) शक्ति हो सकती है या नहीं, और यदि हां, तो वह कौनसी होगी, इस प्रश्न पर विचार करते हुए शक्ति के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये निरालाजी ने शक्ति-परिचय पर लिखी हुई श्रीमत् स्वामी शारदानन्दजी महाराज द्वारा की गई श्रुति सम्मत समालोचना का आधार लिया है।[3] इस दृष्टि से शक्ति के एक ही आधार में प्रसव और प्रलयकारी दोनों विरोधी गुणों का समावेश हो जाता है।[4] शक्ति का न नाश होता है और न ह्रास, उसका लोप भी नहीं हो-ता, यद्यपि वह व्यक्त एवं अव्यक्त होती रहती है। उसके इस खेल का परिचय समाज, देश, संसार तथा समस्त ब्रह्माण्ड के उद्भव, उन्नयन और अवसान में दि-खायी देता है।[5] इसी प्रकार ऋग्वेद के देवी सूक्त का उद्धरण देते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि कर्ता, कर्म[6] और क्रिया तीनों शक्ति के अधिकार के अन्त-र्गत हैं। वह सर्वशक्तिमान है। शक्ति के व्यक्त, अव्यक्त होने की क्रीड़ा भाव-

---

१- निराला- प्रबंध-प्रतिमा- पृष्ठ- ७०, २- वही- पृष्ठ- १५२

३- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- १५१

४- वही- पृष्ठ- १५२

५- वही - पृष्ठ- १५१

६- वही- पृष्ठ- १५२

राज्य या सूक्ष्म मनोराज्य में भी चलती रहती है।[1] इसे भावशक्ति कहा है। उक्त भावशक्ति अथवा धारणाशक्ति अथवा चेतनाशक्ति जिस मनुष्य को प्राप्त है,वह अपराजेय है,उसके आगे किसी अपर शक्ति का जोर नहीं चलता।[2]

निरालाजी के अनुसार आदिशक्ति एक ही है।[3] उसके दो भाव या दो पुत्र हैं - सुर और असुर,तथा इन्हीं के आधार पर दो शक्तियों की कल्पना की गई है - १- दैवी शक्ति,२- आसुरी शक्ति।[4] ये दोनों शक्तियां आपस में लड़कर हारती या जीतती हैं। कभी-कभी दैवी शक्ति को आसुरी शक्ति से हारना भी पड़ता है।[5] इस तथ्य की पुष्टि निरालाजी ने 'राम की शक्ति पूजा' में रावण की अल्पकालीन सफलता दिखाकर की है। परंतु कभी-कभी दुर्बलता का परिहार करने के लिये उक्त आसुरी शक्ति का भी वरण करना पड़ता है।[6]

निरालाजी ने मानवीय और पशु शक्ति की कल्पना करते हुए बताया है कि प्रतिद्वन्द्विता में पाशविक शक्ति निहित रहती है,अत: इस शक्ति के नाश द्वारा अभेद की स्थापना संभव है।[7]

स्त्रीत्व की चर्चा करते हुए निरालाजी ने शक्ति को और अधिक व्यापक रूप में देखने का प्रयास किया है। उनके अनुसार स्त्री में लक्ष्मी और उर्वशी दोनों के गुण समन्वित हैं। प्रिया भाव,ललित कला आदि का ज्ञान उ-

---

१- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- १५२
२- वही - पृष्ठ- १५४-१५५
३- निराला- प्रबंध-प्रतिमा- पृष्ठ- ७१
४- निराला- चयन- पृष्ठ- १५३
५- वही- पृष्ठ- १५३
६- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ५५
७- निराला- प्रबंध-पद्म- पृष्ठ- ५१

-वंशी में विद्यमान है, जिनका आरोप सरस्वती पर किया गया है, जिससे भाव में शुद्धता रहे।[1] लक्ष्मी में नारी-महिमा निहित है। वह सुलक्षणा गृहिणी के रूप में रक्षा तथा सेवा करती है। इसी लक्ष्मी भाव का विकास मातृत्व में होता है। विष्णु की शक्ति लक्ष्मी भी इसी मातृत्व में पूर्णता प्राप्त करती हैं।[2] इस प्रकार स्त्री के उदात्त रूप को स्पष्ट करते हुए उन्होंने उसे जीवनी शक्ति की संज्ञा दी है।[3]

शक्ति संबंधी निरालाजी के उक्त विचारों की भक्तपूर्ण भावपूर्ण अभिव्यक्ति 'माँ' की कल्पना द्वारा काव्य में निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है।

ब्रह्म संवलित शक्ति का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं -

विकसित फिर होता मैं,
मेरी ही शक्ति धरती पहले विकार रूप,---[4]

उक्त अद्वैत चेतना को महाशक्ति के रूप में कर्ता, कर्म, क्रिया स्वरूप कल्पित कर, उस आदिशक्ति का विराट रूप प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -

'जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि-इन्द्र-सुरासुर-
जड़-चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते-पलते हैं, नष्ट होते हैं, अंत में-

१- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ६६
२- वही - पृष्ठ- ६७
३- वही - पृष्ठ- ६८
४- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १०१-१०२

सारे ब्रह्मांड के जो मूल में विराजती हैं,
आदि-शक्ति रूपिणी,
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है,
माता हैं मेरी वे ।[1]

महाशक्ति के व्यक्त-अव्यक्त का खेल[2] तथा उसके दो रूप -दैवी,आसुरी शक्ति का वर्णन `राम की शक्ति पूजा` में हुआ है -

`उतरीं पा महाशक्ति से आमंत्रण,
अन्याय जिधर हैं उधर शक्ति----`[3]

यह आसुरी शक्ति है,जिसकी कल्पना निरालाजी ने चन्द्र पर लांछन के समान की है - 2

`देखा,हैं महाशक्ति रावण को लिये अंक,
लांछन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक ----`[4]

अत: श्रीराम शक्ति की मौलिक कल्पना करते हुए उसकी आराधना कर महाशक्ति को प्राप्त करते हैं,[5] और श्रीराम की दैवी तथा रावण की आसुरी शक्ति के युद्ध में दैवी शक्ति की विजय होती है ।

निरालाजी ने शक्ति के `मृत्यु` रूप की विकराल,संहारक कल्पना का वर्णन,स्वामी विवेकानन्दजी की कविताओं के अनुवाद द्वारा किया है -

१- `मृत्यु स्वरूपे मां,हे तू ही
सत्य-स्वरूपा,सत्याधार-----`[6]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २४२
२- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १५८
३- वही- पृष्ठ- १५७
४- वही- पृष्ठ- १५८
५- वही -पृष्ठ- १५६,१६५
६-

मां,तू मृत्यु घूमती रहती
उत्कट व्याधि रोग बलवान-----[1]
२-"शक्ति मृत्यु रूपा अवदात-------[2]

शक्ति के कठोर,संहारक रूप का आवाहन कर,वे कहते हैं-

"एक बार बस और नाच तू श्यामा ----
भैरवी भेरी तेरी झंझा,
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा---[3]

उक्त भयंकर,विकराल रूप के साथ निरालाजी ने शक्ति के कोमल, शान्त,सुखदायी रूप का भी,शक्ति की विविध रूपों में कल्पना करते हुए-स्तवन किया है। विशेष रूप से उन्होंने स्नेह,सौंदर्य,विद्या स्वरूपा सरस्वती की अनेक बार वंदना की है -

उस विराट सुंदरी वीणावादिनि कास्तवन करते हुए स्वतंत्र-रव और अमृत मंत्र की याचना की है,तथा ज्योति के निर्झर को बहाकर अंधकार से मुक्ति दिलाने की[4] कामना व्यक्त की है,और नवीन चेतना का संचार करने की प्रार्थना की है।

शक्ति के लक्ष्मी रूप को उद्बोधित कर,भारत को दरिद्रता से मुक्ति दिलाकर ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने की प्रार्थना की है -

"जागो जीवन-धनिके
विश्व-पण्य-प्रिय वणिके-----[5]

वसंत ऋतु से सज्जित पृथ्वी[6] भारती की वंदना तथा उसका जयगान करते हुए

१- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ११०-१११, २- वही- पृष्ठ- १६७

३- निराला- परिमल- पृष्ठ- १५०

~~४--निराला--अर्चना-पृष्ठ--७७~~

५६४निराला- अनामिका-पृष्ठ-३३, गीतिका-पृष्ठ- ३, वही-पृष्ठ- ७६

५- निराला- गीतिका- पृष्ठ- १७, वही-पृष्ठ- २०

उसके विराट वैभवशाली रूप का वर्णन किया है-

'भारति,जय,विजय करे ----

लंका पदतल शतदल,गर्जितोर्मि सागर-जल ---

मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,प्राण प्रणव ओंकार----'[1]

इसके अतिरिक्त निरालाजी ने मातृभाषा की भी वंदना की है-

'बन्दूं पद सुंदर तव,छन्द नवल-स्वर गौरव,

जननि,जनक-जननि-जननि,जन्मभूमि माषे---'[2]

'नये पत्ते' काव्य-संग्रह में 'देवी सरस्वती' कविता इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस रचना में निरालाजी ने अत्यन्त कलात्मक ढंग से सरस्वती के विराट स्वरूप की षड्ऋतुओं के माध्यम से अभिव्यंजना की है,तथा प्रकृति,काव्य, सभ्यता,संस्कृति,कवि,संत आदि में उसीकी चेतना को उद्घाटित करते हुए अंत में कहा है -

'तुम्हीं चिरंतन जीवन की,उन्नायक भविता,

छवि विश्व की मोहिनी,कवि की सनयन कविता'[3]

निरालाजी ने विविध-स्वरूपा,विश्वव्यापिनी शक्ति के प्रति[4] अपनी असमर्थता,दीनता,अकिंचनता आदि को व्यक्त करते हुए,भक्तिपूर्ण कृपा-याचना,'मां' या 'जननि'[5]- संबोधन के अतिरिक्त निम्नलिखित विशेषणात्मक संबोधनों द्वारा की है -

किरणमयी[6], ज्योतिर्मयी[6], कृपामयि[7], आश्रमवासिनी[8], भव अर्णव

१- निराला- गीतिका- पृष्ठ- ७३,२-वही- पृष्ठ- ८३

३- निराला- नये पत्ते- पृष्ठ- ६५-८०, ४- निराला-अनामिका-पृ०४०,परि०पृ६५

५- निराला-परिमल-पृ०१७४,२४३-२४५, गीतिका-पृ०२२,३५,३६,३८,५८,६७,१००
अर्चना-पृ०२७,१२४, नये पत्ते- पृ०६०, आराधना-पृ० गीत-८

६- निराला-परिमल-पृ०३४,

७- निराला- गीतिका-पृष्ठ- १८,८वही- पृष्ठ- ३६,९वही-पृष्ठ- ६३

- की तरणी तरुणा, दाव-दहन की श्रावण-वरुणा, सहज साधिका अरुणा,[1] विश्वभरणा,[2] अशरण-शरण-शरणा, जय-विजय-रणना,[3] निश्शर-विश्वतरणा, तपोवरणा, करुणामयि, ज्योतिर्मयी, तपश्चरिता, सुमति भरिता, तमस्तरिता, मरण सरिता,[4] आदि। 'मां' की इतनी वंदना और दया-याचना के फल-स्वरूप, उसका आशीर्वाद या उसकी कृपा की प्राप्ति का भी निरालाजी ने वर्णन किया है -

अनेक बार खोजने और याचना करने के बाद आखिर मां ने भक्त को शरण दी, और उसके थके हुए तन-मन में पुन: चेतना का संचार हुआ-

'मुझे भर लिया तुमने गोद में
कितने चुंबन दिये---
शक्त शिराएं हुईं रक्त वाह ले
मिलीं तुम मिलीं, अन्तर कह उठा
जब थका, रुका'---[5]

यह संसार तो त्रास और निराशा का घर है, परंतु मां की कृपा से भक्त भय-रहित होकर तर गया-

'मात:, किरण हाथ प्रात: बढ़ाया
कि भय के हृदय से पकड़कर छुड़ाया ---'[6]

शक्ति के अतिरिक्त अन्य सगुण रूप के प्रति भी निरालाजी ने

१- निराला- अर्चना- पृष्ठ- १७
२- वही - पृष्ठ- १६
३- वही - पृष्ठ- ५८
४- वही - पृष्ठ- ११७
५- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १४७
६- निराला- अर्चना- पृष्ठ- २७

श्रद्धा और समर्पण-भाव से युक्त विनय गान अथवा प्रार्थना गान प्रस्तुत किये हैं।

वस्तुत: प्रार्थना के अनेक प्रकार माने गये हैं-यथा, धार्मिक संस्कार जन्य प्रार्थना (Ritualistic-Prayer), श्रद्धापूर्ण प्रार्थना, आध्यात्मिक अथवा भौतिक आशिर्वाद की आवश्यकता के हेतु प्रार्थना, और ईश्वर के साथ भावात्मक संपर्क या एकता स्थापित करने के हेतु प्रार्थना (Prayer for communion)।[1] प्रार्थना के उक्त प्रकारों में अंतिम विशेष महत्वपूर्ण है। इसके अंतर्गत एक उच्च परम सत्ता की कल्पना की जाती है, तथा प्राय: उसके साथ भक्त या साधक की बातचीत, स्वगतोक्ति कथन (Monologue) के रूप में होती है। इसमें, प्राय: पापों का स्वीकार किया जाता है तथा परम शान्ति की तीव्र आकांक्षा व्यक्त की जाती है।[2]

निरालाजी की अन्य प्रार्थनापरक रचनाएं अथवा विनय गान इसी अंतिम प्रकार के हैं। इस प्रकार की रचनाएं आरंभ से अंत तक मिलती हैं। प्रार्थना गीतों के प्राय: दो रूप निरालाजी की रचनाओं में मिलते हैं- १- जिनमें किसी नाम रहित परम सत्ता के प्रति, ~~विशेष~~ विशेषण का प्रयोग करते हुए विनय की अभिव्यक्ति या प्रार्थना की गई हो, २- जिनमें नाम सहित, ईश्वर के कीर्तन के रूप में अपनी भक्ति-भावना को अभिव्यक्त किया गया हो।

प्रथम प्रकार के प्रार्थना गीतों में व्यक्त भावों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

अत्यन्त आर्त वाणी में भक्त कहता है -

'डोलती नाव प्रखर है धार, संभालो जीवन-खेवनहार'--

अत्यंत भयभीत हूं, कांप रहा हूं, और इस स्थिति की अतिशयता भी बढ़ रही है, इस दयनीय अवस्था का पारावार नहीं है, अत: सम्हालो-

---

१- Mainkar T.G.- Mysticism in Rgveda - P. 116

2- Ibid

'भय में तन्मय, थरथर कम्पन तन्मयता -
छन छन में बढ़ती ही जाती है अतिशयता
पारावार अपार, जीवन-खेवनहार' -------[1]

संसार के बंधन मेरी इस अवस्था को और अधिक करुण और दयनीय बना रहे हैं, इन्हें तोड़कर सारे अवरोध दूर करो, मुक्त करो-

'टूटें सकल बंध
कलि के, दिशा-ज्ञान-गत हो बहे गंध------[2]

अत: यह जगत, जो दु:ख का कारागार है, वहां से छूटना है, बहुत ठगे गये अब यहां से मुक्त करो और शान्ति दो-

'शान्ति चाहूं मैं, तुम्हारा दु:खकारागार है जग---'[3]

अशरण हूं, शरण दो, भवसागर से पार करो, उद्धार करो-

१- दुरित दूर करो नाथ, अशरण हूं गहो हाथ[4]
२- भव-सागर से पार करो हे, गह्वर से उद्धार करो हे--[5]

निरालाजी ने अन्य अनेक रचनाओं में उक्त प्रकार के भावों को अभिव्यक्त किया है।[6] 'अर्चना' तथा 'आराधना' की रचनाओं में प्राय: आत्म-

---

१- निराला- परिमल-पृष्ठ- ३०,३१
२- निराला-गीतिका-पृष्ठ- ७५
३- निराला- बेला-पृष्ठ- ५६
४- निराला- अर्चना-पृष्ठ- २२, ५- वही- पृष्ठ- २३
६- निराला- परिमल- पृष्ठ- ११७,१६५ , बेला- पृष्ठ- २३,५७,८०
अर्चना- पृष्ठ- ४३,४५,५१,५६,६२,६४,६५,७२,१११,११६
आराधना-गीत सं० ६,१६,२४,२८,३५,४१,४६,५०,६०,६१,
६२,६८,६६,८७,८८,८६

निवेदनात्मक विनय गान ही मिलते हैं।

नाम स्मरण या नाम-संकीर्तन के रूप में निरालाजी की निम्न-लिखित अभिव्यक्तियां दृष्टव्य हैं।

उन्होंने राधा-कृष्ण के चरण-कमलों की वन्दना इस प्रकार की है-[१]

'श्याम-श्यामा के युगल पद, कोकनद मन के विनिर्मद---'

अन्य देवों के प्रति आरती के रूप में मिलता जुलता जयगान इस प्रकार है-

'जय अजेय, अप्रमेय, जय जग के परम पार---
जय शिव, जय विष्णु, जिष्णु
शंकर, जय कृष्ण, राम----------'[२]

भजन के रूप में हरि या राम को संबोधित कर इस प्रकार अपनी भक्ति-भावना व्यक्त की है-

१- 'काम के छवि धाम, शमन प्रशमन राम-----'[३]
२- 'अशरण शरण राम, काम के छवि धाम---'[४]
३- 'भजन कर हरि के चरण, मन-----------'[५]
४- 'हरि भजन करो, भू भार हरो----------'[६]

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त हरि और राम के प्रति अन्य रचनाएं भी देखी जा सकती हैं।[७]

१- निराला- अर्चना- पृष्ठ- ११५
२- निराला- अराधना- पृष्ठ- गीत सं० ६७
३- निराला- अर्चना- पृष्ठ- ११६
४- निराला- आराधना- गीत सं० ४८
५- निराला- अर्चना- पृष्ठ- ६४
६- निराला- आराधना- गीत सं० ५१
७- निराला- आराधना- गीत सं० १४,२१,८२ , अर्चना- पृष्ठ- ६०

निरालाजी ने उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त,ईश्वर के प्रति, मनुष्य,समाज,तथा देश की मंगल कामना करते हुए,मंगल गान की भी रचना की है-

"प्रतिजन को करो सफल,जीर्ण हुए जो यौवन
जीवन से भरो सकल।------
छल का छुट जाय जाल,देश मनाये मंगल"[1]

अन्य रचनाओं में भी उक्त भाव की व्यंजना देखी जा सकती है।[2]

निरालाजी की कुछ रचनाओं में ईश्वर के प्रति,परम्परागत संत-कवियों की शैली के भी दर्शन होते हैं। यथा-

१- "अगर समस्त-पदों का किसी को डर होता,
तो हाथ पैरों वाला भी न कहीं सर होता,
कहां रहा है कौन खब्र ले आने के लिए
न घर होता,न नभ होता,न कबूतर होता -----"[3]

'सुरति' की फलक निरालाजी ने इस प्रकार दी है -

"आस लगी है जी की जैसी,खण्डित हुई तपस्या वैसी
विरति सुरति में आयी कैसी--------"[4]

अन्य रचनाओं में भी उक्त प्रकार की व्यंजनाएं देखी जा सकती हैं।[5]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आस्था की दृष्टि से,आस्तिकता की अभिव्यक्ति निराला-काव्य में विशेष गंभीरता

१- निराला- बेला- पृष्ठ- ८१
२- निराला- बेला- पृष्ठ- ८६,८७,८८
३- वही - पृष्ठ- १००
४- निराला- अर्चना- पृष्ठ- ११३
५- वही - पृष्ठ- ~~है~~ ६६,७६,८२

तथा गहनता के साथ हुई है. इस दृष्टि से यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि कि निरालाजी का कवि-व्यक्तित्व आस्तिकता-पूर्ण था.

निरालाजी की आस्तिकता का विषय मूलतः ब्रह्म ही कहा जा सकता है, जिसे उन्होंने निर्गुण, निराकार, अनिर्वचनीय, शून्य, शक्ति, साकार अवतारी राम, कृष्ण, देवी, वाणी, समाज, राष्ट्र और आत्मा आदि के रूप में परिकल्पित किया है. आचार्य नं. दु. बाजपेयी ने इन्हें तीन कोटियों द्वारा वर्णित किया है. १ - निर्गुण निराकार, २ - सगुण निराकार, ३ - सगुण साकार.[१] आशय यह कि निरालाजी का आस्तिक्य एक विशेष प्रकार के अद्वैतवाद पर आधारित है. निराला जी के इस अद्वैतवाद के स्वरूप की चर्चा आगे की गई है.

३-२ <u>अंधकार</u> : आस्तिकता का परिचय देते हुए, निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के साथ निरालाजी ने, जगत संबंधी अपनी दृष्टि या मान्यताओं को भी प्रकट किया है. उनके अनुसार, ईश्वरोपासना, तथा ईश्वर-प्राप्ति करने या उस परम सत्य, परम ज्योति के दर्शन करने के हेतु

---

१ - बाजपेयी नंद दुलारे - हिंदी साहित्य २० वीं शताब्दी
पृष्ठ - १६७

अंधकार को पार करना आवश्यक है.[1] यह माया रूपी जगत ही वह अंधकार है,[2] जिसके परे जान वास्तविक पुरूषार्थ है. अतएव उक्त अंधकार के स्वरूप का उद्घाटन निरालाजी ने किस प्रकार किया है, इसे निम्नलिखित अनुशीलन द्वारा देखा जा सकता है.

वस्तुत: मनुष्य, माया के अंधकार में फंसा हुआ है.[3] कारण यह कि, कल्पना करना मन की मूल वृत्ति है और यह संसार ही उसका कल्पनालोक है, जो स्वप्ने के समान सत्य है. मनुष्य, इसे ही वास्तविक सत्य समझकर संसार के या माया के समुद्र में तैरता है, परंतु पार नहीं हो पाता. वह पार तभी हो सकता है जब मन की कल्पन-वृत्ति का अंत होगा, और इस प्रकार माया (संसार)का पीछा छूटेगा[4].

---

१ - निराला - तुलसीदास - पृष्ठ २५ , छन्द सं. ३५.

२ - तुल : 'इन्द्रो मायाभि : पुरूरूप इयते' - ऋग्वेद अष्ट.४अ.७. व -३३. मं. १९.

३ - निराला - प्रबंध-प्रम-पृष्ठ -१५७

४ - निराला - संग्रह पृष्ठ -२१.

निरालाजी के अनुसार सृष्टि और संसार दोनों एक है, दोनों में भेद नहीं नहीं है. सृष्टि के समान भी अनादि है. परंतु फिर भी उन्होंने जहां संसार को को अनादि या सृष्टि का पर्यायवाची कहा है, वहां वह ' जगत ' के अर्थ में है, और जहां वह माया के रूप में गृहीत है, वहाँ वह संसार के रूप में स्वीकृत है. आशय यह कि उनके अनुसार सृष्टि या संसार के रहस्य को समझने के लिये माया की व्याख्या आवश्यक है.[1]

वस्तुत: महाशक्ति की कल्पना से ही यह संसार दिखाई दे रहा है, क्यों कि कल्पना चंचल या गतिशील होती है, अत: उसे प्रवाह भी कहा जा सकता है. महाशक्ति की यह कल्पना अनादि और अनन्त है, अर्थात यह प्रवाह अनादि और अनन्त है. पहर, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, युगान्तर, आदि इस अनन्त प्रवाह के समय सूचक खण्ड हैं. इस प्रवाह की प्रत्येक वस्तु उस अनादि सत्ता से अभिन्न है.[2] जो कुछ इन्द्रियगोचर है, वह कल्पना या प्रवाह से पृथक नहीं है, अत: यह समस्तविश्व, संसार, प्रवाह, कल्पना या माया के अनधिन्न है.[3] परंतु प्रवाह गतिशील रहता है, जिसका मूल कारण परिवर्तन है. इसी प्रकार कल्पना भी परिवर्तनशील होती है. आशय यह कि माया, कल्पना या प्रवाह में परिवर्तन विद्यमान रहता है. परिवर्तन के अभाव में, प्रवाह और कल्पना स्थिर हो जायं, और माया का परिहार हो जाय. अत: इस दृष्टि से संसार परिवर्तनशील सिध्द हुआ.[4]

---

१ -
१२ - निराला - चयन - पृष्ठ १७९
२३ - निराला - संग्रह - पृष्ठ ११
३४ - वही - पृष्ठ - १२
४५ - वही - पृष्ठ - १२-१३.

जीवन :- संसार के समान जीवन भी एक प्रवाह है,अत: जीवन भी परिवर्तनशील है । परिवर्तनशील होने के कारण,जीवन-खण्ड-खण्ड ज्ञानों का अनुभव है अथवा खण्ड-खण्ड ज्ञानों की समष्टि है । परंतु वस्तुत: येह खण्ड-ज्ञान अज्ञान ही हैं,ये स्वप्नवत् असार संसार के ज्ञान हैं,[1] अर्थात् ये माया-राज्य-मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार-[2] के मिथ्या अनुभव हैं । जो वास्तविक ज्ञान है वह अखण्ड है,एकरस,अपरिवर्तनशील,स्थिर है, प्रवाह से मुक्त है ।[3] निरालाजी के अनुसार यद्यपि,माया,प्रवाह,परिवर्तन,जीवन और खण्ड-ज्ञान बाहरी भेद हैं, परंतु वस्तुत: वे एक ही हैं ।[4] परंतु वे यह मानते हैं कि इस मायिक संसार के सब मनों के ऊपर एक शुद्ध मन भी है,जिस पर माया का बल नहीं चलता ।[5]

निरालाजी के उक्त दृष्टिकोण को समझने के लिये,तथा उसके व्यापक स्वरूप से अवगत होने के लिये,सृष्टि और संसार विषयक उनकी मान्यताओं का अध्ययन आवश्यक है ।

३-३ सृष्टि : सृष्टि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताते हुए - सृज-क्तिन - सृष्टि - (निरालाजी) वे इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि शब्द की धातु

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १३,२०

२- वही - पृष्ठ- ७४

३- वही - पृष्ठ- १३

४- वही - पृष्ठ- १३

५- वही - पृष्ठ- ४६

में ही अदृश्य सीधेपन के साथ एक प्रकार की वक्रता है, अत: जिस प्रकार यह शब्द, अदृश्य सीधेपन तथा वक्रता दोनों का मिश्रण है, उसी प्रकार यह समस्त सृष्टि भी गुण-दोष, जड़-चेतन, अच्छा-बुरा, ज्ञान-अज्ञान, के मैल, तथा सत्-असत् एवं सुर-असुर भावों से बनी हुई है। इस तथ्य को उन्होंने, शिव-पार्वती के पौराणिक रूपक, तथा[2] दिवस-रात्रि, पुरुष-प्रकृति, पति-पत्नी, आदि द्वारा भी पुष्ट किया है। इस प्रकार सृष्टि के अन्तर्तत्व पर विचार करने के पश्चात्, उसके बाह्य स्वरूप पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत की आलोचना निम्नलिखित रूप में की है।

सृष्टि-तत्व ज्ञान से उद्भूत है। अत: भारतीय दृष्टि के अनुसार मनुष्य, मनुष्य का ही[3] परिणाम है, डार्विन के विकासवाद की तरह बन्दर का परिणाम नहीं। भारत में इस विषय पर मनस्तत्व-प्रधान विचार प्रस्तुत किये गये हैं, जब कि डार्विन ने भौतिक विकास या जीव-जंतुओं के विकास को लेकर अपना सिद्धान्त स्थापित किया है। निरालाजी के अनुसार, डार्विन, जल में मल को देखकर सृष्टि का क्रम रखता है, परंतु भारतीय दर्शन तो इस जल (सृष्टि) को[4] निर्मल मानता है, अत: उक्त प्रकार के जड़त्व की संभावना ही नहीं रहती। वस्तुत: भारतीय दर्शन के अनुसार तो सृष्टि अमैथुनी मानी गई है।[5] आशय यह कि भारत के वेद-वेदान्त यही कहते हैं कि सृष्टि का उद्भव

१- निराला- प्रबंध-प्रतिमा- पृष्ठ- ६४,१४०, चाबुक- पृष्ठ- ७३-७४

२- निराला- प्रबंध-प्रतिमा- पृष्ठ- ६५

३- वही - पृष्ठ- ६६

४- निराला- चयन- पृष्ठ- १७७-१७८

५- निराला- प्रबंध-प्रतिमा- पृष्ठ- ६७

और विकास ज्ञान से ही हुआ है । [१] ज्ञान ही ब्रह्म है,अर्थात् इस विराट ब्रह्म की इच्छा से सृष्टि उत्पन्न हुई है । [२] अतएव इसे विधाता की सृष्टि कहना उपयुक्त है । [३] दूसरे शब्दों में निरालाजी ने इसे 'ईश्वरीय यथार्थ नाटक',या 'एक ही सर की सरस सृष्टि सरस्वती' कहा है । [४]

संक्षेप में,सृष्टि- जड़-चेतन,ज्ञान-अज्ञान,विद्या-अविद्या, पुरुष-प्रकृति का मेल है । ब्रह्म अथवा आनन्द अथवासत्य अथवा ज्ञान ही इस सृष्टि का केन्द्र है । [५]

३-४ संसार : निरालाजी के अनुसार,संसार,प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों का योग है । [६] उसमें उत्थान और पतन की प्रक्रिया अव्याहत रूप से चलती रहती है । कारण यह कि वह भी प्रवाह है,और प्रवाह परिवर्तनशील होता है,अर्थात् संसार परिवर्तनशील है । [७] इस प्रवाही,परिवर्तनशील संसार में स्थिर रहना अशक्य है,अत: इसमें रहकर प्रगति करना आवश्यक है,और वह प्रगति बहिर्मुखी नहीं परंतु अन्तर्मुखी होनी चाहिये,प्रवाह में बहकर नहीं,अपितु उसमें डूबकर,उस परम अन्त:सत्ता को प्राप्त करना चाहिये । [८]

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १५४

२- वही - पृष्ठ- ६६,१४६

३- वही - पृष्ठ- ७ , संग्रह - पृष्ठ- ६६

४- प्रबं निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ४३

५- वही - पृष्ठ- १४६

६- निराला- संग्रह - पृष्ठ- ३

७- वही - पृष्ठ- १२ , ८- वही - पृष्ठ- ३

यह संसार गुण-दोष युक्त विरोधों से पूर्ण है,फलस्वरूप उ-समें जो संघर्ष,उत्थान-पतन होता रहता है,वही उसके प्रवाह या स्वयं संसार शब्द में निहित गतिशीलता[1] का प्रमाण है । इस विरोधमूलक संघर्षमय स्थिति में ~~रुकक~~ रहकर ही प्रगति संभव है ।[2] वस्तुत: प्रगति के रुकने से यह संसार या सृष्टि ही असंभव हो जाय,क्योंकि सृष्टि या संसार अनन्त है,गतिशील है,अत: प्रगति भी अनन्त और गतिशील होगी ।[3]

निरालाजी ने भारतीय दर्शनों का प्रमाण देते हुए बताया है कि इस संसार की प्रत्येक वस्तु और जीव में ईश्वर की स्वतंत्र सत्ता है,तथा ईश्वर की स्वतंत्र क्रीड़ा ही यह संसार है ।[4] इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्दजी के विचारों कका आशय प्रस्तुत करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि यह स्थूल, बाह्य संसार,वस्तुत: शक्ति तरंगों के अतिरिक्त कुछ नहीं । सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्तियों का पारस्परिक संघर्ष ही बाह्य संसार का व्यवहार या उसकी लीला है,तथा विरोधी भावों के होने पर भी संसार के मूल में सर्वव्यापिनी एक ही शक्ति की क्रीड़ा हो रही है ।[5] आशय यह कि विधाता की परिधि में समस्त संसार आ जाता है ।[6] उक्त विवेचन के संदर्भ में निरालाजी ने उर्दू के कवि नज़ीर तथा गो०तुलसीदास के काव्य में दृष्टिगत समान भावों की ओर संकेत करते हुए इस तथ्य की पुष्टि करने का प्रयास किया है कि संसार तथा ईश्वर दोनों एक ही तत्व हैं । इसे उन्होंने विशिष्टाद्वैत कहा है ।[7]

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ७१ , प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- २५३

२- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ७१

३- वही - पृष्ठ- ~~१५८~~ ७२ , ४- वही - पृष्ठ- १५८

५- निराला- चयन- पृष्ठ- १५४

६- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६-७

७- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ३५

निरालाजी ने अपनी काव्य रचनाओं में अंधकार शब्द द्वारा उक्त विचारों को काव्यात्मक रूप प्रदान किया है, जिसे निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है ।

उनके अनुसार, माया के घोर, दुस्तर अंधकार को भेद कर ही जीवन की विजय प्राप्त हो सकती है -

'प्रथम विजय थी वह -
भेदकर मायावरण
दुस्तर तिमिर घोर-जड़ावर्त ----'[१]

यह नश्वर संसार जो माया से आवृत 'मैं' का ही परिवार है, अंधकार का सागर है,[२] इस सागर के पार यदि कुछ है तो वह सार है या असार यही कवि की तीव्र जिज्ञासा का विषय है - क्योंकि यह अंधकारमय संसार तो असार है -

'कौन तम के पार? (रे, कह)---
उदय में तम-भेद सुनयन, अस्त दल पलक-कल तन ,
निशा-प्रिय-उर-शयन सुख-धन ,
सार या कि असार? - (रे, कह)-----'[३]

अत: कवि, ईश्वर के द्वारा द्वार बंद किये जाने पर, अत्यन्त आर्त होकर कहता है कि यह अंधकार की वेदना मृत्यु-समान हुई जा रही है -

'कर लिये बंद तू ने अपार, उर के सौरभ के सरण-द्वार
है तभी मरण रे, अंधकार, घेरता तुझे आ दाण-दाण--'[४]

इस प्रकार अंधकार की व्यंजना अन्य रचनाओं में भी हुई है ।[५]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २६०
२- वही - पृष्ठ- १११ , अनामिका- पृष्ठ- १३
३- निराला- गीतिका- पृष्ठ- १४, ४- वही - पृष्ठ- ५३
५- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १०१,१८८
परिमल- पृष्ठ- १४२,१६६,१६७ , गीतिका- पृष्ठ- १४,१८,
६६,७५,९६,१००, बेला- पृष्ठ- ६,३३,८८

`पंचवटी-प्रसंग`(४), में राम के मुख से माया का रूप इस प्रकार स्पष्ट किया है -

`व्यष्टि और समष्टि में नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम -
माया जिसे कहते हैं ।----[१]

व्यष्टि और समष्टि अभिन्न हैं,यह संसार या सृष्टि उस परम सत्ता की इच्छा का फल है---

१-`कारण-कार्य भी है वही -
उसकी ही इच्छा है रचना-चातुर्य में
पालन संहार में -----[२]

२-`जिनकी इच्छा से संसार में संसरण होता -
चलते फिरते हैं जीव,
उन्हीं की इच्छा फिर सृजती है सृष्टि नयी ।--[३]

यह सृष्टि,संसार या जीवन संघर्षमय है,उत्थान पतन के द्वन्द्व से पूर्ण है-

`जीवन,प्रात के लघु-पात से
उत्थान-पतनाघात से-------[४]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २५० ,
तुल: विवेकानन्द- विविध प्रसंग - १६५३ - पृष्ठ- ३४

२- निराला- परिमल- पृष्ठ- २५१

३- वही - पृष्ठ- २५२ ,
तुल: १-`सो कामयत बहुस्यां प्रजायेय ।`- तैतिरीय उपनिषद, २-६
२-`तदैक्षत् बहुस्यां प्रजायेय ।`- छान्दोग्य उपनिषद्,६-२-३

४- निराला- परिमल- पृष्ठ- २६

माया के आवर्त में यह संसार कसा हुआ है,अत: कवि उसका नाश करने के लिये बादल का आवाहन करता है -

> 'भय के मायामय आंगन पर
> गरजो विप्लव के नव जलधर ----[1]

अंतत: यह संसार स्वप्न ही है,परंतु उसीका अंश है और अंत में उसीमें मिल जाता है -

> 'स्वप्न-सम जल-बिम्ब जल में मिल जाता है'---[2]

परंतु ज्ञान,इस स्वप्नवत् जगत या माया का परिहार करता है,अत: यह मायावृत भ्रामक जीवन,ज्ञान के प्रकाश से ही जागृत होता है,तथा तृष्णा या माया का अंत होता है -

> 'बार-बार छाया में धोखा खाया---
> जागी तब न प्यास थी और न माया ----[3]

निरालाजी के सृष्टि या संसार विषयक दृष्टिकोण के संदर्भ में व्यष्टि तथा समष्टि संबंधी उनकी मान्यताओं का विवेचन उपयोगी एवं आवश्यक है,अत: उसे निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है ।

३-५ <u>व्यष्टि और समष्टि</u> : निरालाजी ने अपने अनेक निबंधों में भारतीय

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- १७८
२- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ६६
३- निराला- परिमल- पृष्ठ- ८७-८८

जीवन का, व्यक्तिगत एवं समष्टिगत दोनों रूपों में गंभीर अध्ययन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े हुए भारत की शोचनीय दशा का कटु अनुभव, स्वयं निरालाजी को पर्याप्त मात्रा में हुआ था। कवि रूप में वे जितने कला के प्रति सचेत थे उतने ही एक नागरिक के रूप में वे भारतीय जीवन के प्रति भी जागरूक थे। भारत, भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति, जाति, समाज आदि का सूक्ष्म अध्ययन उन्होंने व्यष्टि तथा समष्टि दोनों के संदर्भ में किया था। अतएव उक्त विषयों पर प्रस्तुत किये गये निरालाजी के चिन्तन-मनन का अनुशीलन, उनके समष्टि-चेता चिन्तक-व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में भी सहायक सिद्ध होगा।

'चरखा आन्दोलन' के समय रवीन्द्रनाथ द्वारा की गई चरखे की आलोचना का उत्तर देते हुए निरालाजी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि समष्टि के हित में ही व्यष्टि का भी हित समाया हुआ है, अतः जहां समष्टि के कल्याण की बात हो वहां व्यष्टि की स्वतंत्रता की दलील करना अनुपयुक्त है।[1] कारण यह कि व्यक्ति-स्वतंत्रता और समष्टि की संघटना या संघ-योजना दोनों परस्पर संबंसमित संबंधित हैं[2], अतः दोनों में विरोध हानिकारक होगा। समष्टिगत कार्य, समष्टि के लाभ के लिये होता है, परंतु क्योंकि समष्टि का स्वरूप व्यष्टि को लेकर ही संगठित होता है, अतः इस दृष्टि से व्यष्टि को भी लाभ मिलता ही है।[3] यदि संघ-कर्म का विरोध करना ही हो तो उसे समष्टि के विचार से करना होगा, अर्थात् व्यष्टि के विचार से संघ-कर्म का विरोध अनुचित है।

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ३,८

२- वही - पृष्ठ- ४

३- वही - पृष्ठ- ५

-नुचित है।[1] व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आग्रह घोर परतंत्रता तथा हठधर्मी है, वह व्यष्टि व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के लिये हानिकारक है, क्योंकि उससे संगठन ढीला पड़ जाता है।[2] अतएव उसी विचार या कार्य को प्रोत्साहन देना उचित है जिसके द्वारा बहुसंख्यक मनुष्यों को लाभ एवं सुख मिले। यही सबसे बड़ा पुण्यकार्य है।[3] आशय यह कि जब तक समष्टि का व्यष्टि में विभाजन होकर पूर्ण समीकरण नहीं होता, तब तक देश का पुनर्निर्माण असंभव है।[4]

निरालाजी ने व्यष्टि-समष्टि की चर्चा के अन्तर्गत जाति तथा समाज पर भी विचार किया है, जिसे निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

३-६ जाति : निरालाजी के अनुसार भारतीय जाति-प्रथा, मनुष्यों का सर्वश्रेष्ठ श्रेणी-विभाग है। इस प्रथा के अन्तर्गत कोई जाति निन्दनीय नहीं है, क्योंकि भारतीय विचारधारा के अनुसार, मनुष्य, परमात्मा का ही अंश है।[5] परंतु यह व्यवस्था अधिक समय तक टिक नहीं पाई। प्रथम बौद्ध-धर्म के विरुद्ध वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का प्रयास पुराणों आदि के आधार पर-करने हुआ, परंतु द्विजेतर जातियों के क्रमशः दलित होते रहने के साथ, वह प्रयास विफल गया। बाद में मुसलमान तथा अंग्रेज़ शासन ने उसे मृत:प्राय कर

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा - पृष्ठ- ८
२- वही - पृष्ठ- १०-११
३- वही - पृष्ठ- ४
४- वही - पृष्ठ- २५४
५- वही - पृष्ठ- १५-१६

दिया था[1] अतएव वस्तुस्थिति यह है कि हजार वर्ष से अन्य जातियों तथा धर्मावलंबियों द्वारा संस्कार-दूषित[2] वर्णाश्रम जाति-प्रथा को वर्तमान समय में स्वीकार करना मूर्खता है।

अंग्रेजों के शासनकाल में भारतीय जातियों की दशा को लक्ष्य में रखते हुए उन्होंने कहा है कि म्लेच्छों के शासनाधिकार में समाज शूद्रत्व को प्राप्त होता है,और उस[3] स्थिति में सभी वर्ण शूद्र हैं,तथा शूद्रत्व ही समाज का प्रबल संस्कार है। म्लेच्छ राज्य को शूद्र राज्य का पर्यायवाची मानकर निरालाजी ने मनु के इस कथन की पुष्टि की है -`न निवसेत् शूद्रराज्ये`[4], क्योंकि शूद्रों के राज्य में रहने से ब्राह्मण-मेधा नष्ट हो जाती है। म्लेच्छ राज्य में,म्लेच्छ प्रभाव[5] के अन्तर्गत,ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य- किसी का अधिकार प्राप्त नहीं होता, एकमात्र शूद्रत्व रह जाता है।

निरालाजी के अनुसार शूद्रजाति का ही अभ्युत्थान अब[6] संभव है। उनकी उन्नति का आदि स्रोत,वे मुस्लिम शासनकाल मानते हैं। अंग्रेजी राज्य में उसकी और भी वृद्धि हुई,ब्राह्मण से शूद्र तक सबको समान अधिकार मिले। फलस्वरूप,उच्च जातियों की हानि तथा शूद्र[7] जाति को लाभ हुआ। अशिक्षा ने उच्च जातियों को और नीचे गिराया। इस प्रकार प्रकृत्या,

---

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ४४

२- वही - ५२

३- वही - ६५

४- वही - पृष्ठ- १७६

५- वही - पृष्ठ- १७६

६- वही - पृष्ठ- १७८

७- वही - पृष्ठ- १७८

साम्य की स्थापना हो गई। इस प्रकार अंग्रेजी राज्य में समस्त शक्तियों में साम्य हो गया।[1] अत: अब सोई हुई जातियों का ही उत्कर्ष होगा, वे ही अब भारतीय सभ्यता और संस्कृति का निर्माण करेंगी।[2]

निरालाजी के अनुसार, जाति-पांति को तोड़ना श्रेयस्कर नहीं, उन्हें जोड़ना आवश्यक है, क्योंकि देश में भाव-संगठन या कृति का अभाव है।[3] वस्तुत: भारत की जातीयता को युरप की जातीयता से टक्कर लेनी है। इसके लिये वेदान्त-ज्ञान की आवश्यकता है, तभी निर्मल जातीयता का पुनरुत्थान होगा।[4] अंत में निरालाजी ने यह आशा प्रकट की है कि भविष्य में मनुष्य स्वत: अपनी जाति का नया सृजन करेंगे जिसमें ब्राह्मण और वैश्य, कर्म के ही निर्णायक होंगे, पद-उच्चता के नहीं। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की सृष्टि अपने गुण तथा कर्मानुसार होगी।[5]

३-७ समाज : निरालाजी के अनुसार, मनुष्य की तरह समाज का भी अपना व्यक्तित्व हुआ करता है।[6] इस दृष्टि से भारतीय समाज का भूतकालीन व्यक्तित्व अब नहीं रहा।[7] कारण यह कि एक ओर हमारा समाज

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १७६

२- वही - पृष्ठ- १८०

३- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ७५

४- वही - पृष्ठ- ८५

५- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- २५५

तुल: 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:' - श्रीमद्भगवद्गीता, ४-१३

६- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ७७

७- वही - पृष्ठ- ८४

पुरानी रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है,[1] दूसरी ओर वह जड़वाद के जाल में फंस-कर अध्यात्मवाद के[3] पथ से विच्युत हो रहा है।[2] वस्तुत: समाज,संस्कारों के वश होता है। हमारा समाज दिवा-संस्कारों के स्वप्न देख रहा[4] है,ये संस्कार तमोवृत्त हैं इसीलिये यह समाज जीवन्मृत सा हो रहा है। अतएव स्वाधीन तथा सचेत समाज के लिये वे वर्णाश्रम धर्म की कल्पना करते हैं।[5]

निरालाजी ने अधिकार की समस्या को दृष्टि में रखकर कहा है कि यह समस्या मनुष्य समाज में सृष्टि के प्रारंभ[6] से है,तथा व्यापक दृष्टि से,मनुष्य जाति की सभ्यता का मूल भी यही है। मनुष्यों की भिन्न जातीय सभ्यता,उसकी विशेषता,तथा पृथक् एवं मौलिक व्यक्तित्व को अधिकारवाद की दृष्टि से समझा जा सकता है।[7] परंतु,निरालाजी के अनुसार अधिकार का आग्रह रखने की अपेक्षा,समष्टि के कल्याणार्थ उसका त्याग करना अधिक श्रेयस्कर है। इस प्रकार समाज में साम्यास्थिति[8] की उद्भावना होकर,यथार्थ स्वतंत्रता की प्राप्ति हो सकती है।

भारतीय शहरों तथा देहातों में समाज की पतित अवस्था को

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ३०

२- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ८४

३- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ४६

४- वही - पृष्ठ- ४४

५- वही - पृष्ठ- ५२

६- वही - पृष्ठ- ५१

७- वही - पृष्ठ- ५१

८- वही - पृष्ठ- ५१-५२-५३

और ध्यान आकृष्ट कर उसके मूल में निहित अज्ञान, जड़ रूढ़ियां, शास्त्रों का अनर्थ आदि की ओर संकेत किया है।[1] अत: उनके विचार में इस हानिकारक 'भारतीयता' से समाज को मुक्त करना आवश्यक है।[2] अंत में समाज का आदर्श प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है कि मनुष्यों की क्रियाओं तथा भावनाओं पर प्रतिबंध लगाये बगैर उनके आदान-प्रदान में प्रसार होना चाहिये।[3] समाज का मूल मंत्र होना चाहिये - 'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत'।[4]

उपरोक्त विचारों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में मिलती है।

समष्टि के कल्याण की ओर दुर्लक्ष्य करने तथा व्यक्तिगत हेतुओं को सिद्ध करने के प्रयास के परिणामस्वरूप हमारी शक्ति का ह्रास होता है,-

'व्यक्तिगत भेद ने छीन ली हमारी शक्ति'--[5]

इस जीवन में आकर्षण-विकर्षण का तनाव तो बना ही रहता है,[6] फिर भी अंतत: -

'कर्षण बलवान है ----'[7]

और यदि यह कर्षण-विकर्षण का भाव बना रहा, तथा नीचों के साथ, उच्च जातियों की घृणा, द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य- क्षुद्र उर्मियों की तरह टक्करें लेते रहे,

---

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६७-१००

२- वही - पृष्ठ- १००

३- वही - पृष्ठ- १००

४- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ८०

५- निराला- परिमल- पृष्ठ- २३३

६- वही - पृष्ठ- २३४

७- वही - पृष्ठ- २३४

तो निश्चय ही उन शक्ति-तरंगों का वेग घट जायगा तथा वे निम्न जातियां और क्षुद्र से क्षुद्रतर हो जायंगी।[1] इस प्रकार, विभिन्न विरोधी शक्तियों से लड़ने का अर्थ, ~~स्नैक~~ शक्तियों का व्यर्थ व्यय ही है।[2] मृत्यु का इससे बढ़कर और कोई रूप क्या हो सकता है?[3] अत: यदि इन शक्तियों को एकीभूत कर एक परिवार बन जाय, समवेदना का प्रसार हो, अर्थात् -

'व्यक्ति का खिंचाव यदि जातिगत हो जाय ---'[4]

तो निश्चय ही -

'आयेगी भाल पर भारत की गई ज्योति ---'[5]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर निरालाजी का समाज-सुधारक रूप देखा जा सकता है। परंतु वे मूलत: व्यक्तिवादी कहे जा सकते हैं, क्योंकि व्यक्ति के मूल्य को स्वीकार करते हुए ही वे जाति या समाज के कल्याण की कामना करते हैं। आशय यह कि गीता में निर्देशित 'लोकसंग्रह' की भावना उनकी समाजवादी दृष्टि के मूल में है। अतएव वे मूलत: समाज सुधारक नहीं कहे जा सकते, उन्हें मूलत: आस्तिक दार्शनिक कवि ही माना जा सकता है। अन्य समाज सुधारकों का मुख्य लक्ष्य (Goal) जहां सामाजिक-राजनैतिक (Socio - Political) है, वहां निरालाजी उसके भी परे जाते हैं। उनका मूल स्रोत तथा अंत दोनों आध्यात्मिक है। वे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन का उद्देश्य अमृतत्व की प्राप्ति मानते हैं, तथा त्याग- उसकी प्राप्ति का मूल साधन।

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २३३

२- वही - पृष्ठ- २३४

३- वही - पृष्ठ- २३५

४- वही - पृष्ठ- २३५

५- वही - पृष्ठ- २३६

इस अमृत के अधिकार के स्वरूप के आधार पर ही वे व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यक्तित्व की महानता निश्चित करते हैं । यही वेदान्तिक-साम्यदर्शन है[१]। जिसे निरालाजी ने उक्त विवेचन के अन्तर्गत स्पष्ट किया है ।

निरालाजी ने प्राचीन एवं आधुनिक भारत, तथा भारतीयस संस्कृति एवं सभ्यता का भी व्यापक रूप में गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है । उनके, उक्त विषयों संबंधी विश्लेषणात्मक विचारों का मूल उद्देश्य, भारत की पराधीन, निष्क्रिय, निर्बल प्रजा को-पूर्व एवं पश्चिम के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा, भारत के उज्वल सांस्कृतिक मूल्यों तथा उसकी सुगठित सभ्यता के प्रति सचेत कर- उसमें हिन्दुत्व की भावना को अनुप्राणित करना है । इसके साथ ही उन्होंने, उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिये विविध उपायों का भी उल्लेख किया है । निरालाजी के इन विचारों का अनुशीलन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है ।

३-८ भारत : भारत की मूलभूत एवं सनातन विशिष्टता का उल्लेख करते हुए निरालाजी ने कहा है कि भारत ने अनादिकाल से, अंतर्जगत को प्रधानता दी है, अत: उसके सुधार तथा संशोधन अंतर्मुखी हैं[२]। यद्यपि बाह्य संसार का अस्तित्व और महत्व उसने स्वीकार किया है, परंतु अपनी सिद्धि के हेतु, बाह्य संसार, एवं बाह्य प्रयासों को गौण, तथा आंतरिक अध्यवसाय को प्रमुख माना है[३]। 'भारत' शब्द की व्युत्पत्ति उन्होंने इस प्रकार बताई है - भा:+रत (भासि रत:), अर्थात् जो ज्ञान में रमा हुआ है । इस व्युत्पत्ति

१- निराला - आलोचना - पृष्ठ - ७८

२- निराला- चयन- पृष्ठ- १५०-१५०

३- वही - पृष्ठ- १५१

की स्पष्टता ~~केल~~ करते हुए उन्होंने बताया है कि भारत, नाम से ही धर्मात्मा है।[1] अन्य देशों में धर्म का गौण स्थान है। उन देशों के प्राण, मूलत: स्वार्थ से संबंधित हैं, परंतु भारत का तो प्राण ही धर्म है।[2] यहां राजनीति भी धर्म-संवलित स्वीकार की गई, अत: भारत में राजनीति का दबाव कभी स्वीकार नहीं हुआ।[3]

धर्म-प्राण भारत की धार्मिक स्थिति अथवा हिन्दुओं की मानसिक स्थिति का सिंहावलोकन निरालाजी ने इस प्रकार किया है।

उनके अनुसार, भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी प्रतिभा एवं परिश्रम से धर्मराज्य या शान्ति की स्थापना की, तथा गीता में सर्व-धर्म-समन्वय स्थापित किया। परंतु कुछ समय के बाद ब्राह्मणों में स्पर्धा का प्रचण्ड भाव उठा। इसके विरोध में भगवान बुद्ध ने अपने ज्ञान द्वारा नयी चेतना प्रसारित की। धर्म की शिक्षा का माध्यम जनभाषा रही, जिससे सामान्य प्रजा को बहुत अनुकूलता मिली, और भारत में स्थिरता आई। परंतु आचारवान ब्राह्मणों ने पुन: सिर उठाया, और आद्य श्री शंकराचार्य ने उनका नेतृत्व कर, बौद्ध धर्म को परास्त किया। परंतु उनके अद्वैतवाद को पचाने में भारत असमर्थ रहा, अत: उसे जिस सरस, सरल और मनोनुकूल धर्म की आवश्यकता थी उसे श्री रामानुजाचार्य ने, वैष्णव धर्म तथा विशिष्टाद्वैत के प्रचार से पूरा किया। इस धर्म की मूर्ति-पूजाने एक ओर जनता को शक्ति एवं संगठन का एक केन्द्र प्रदान किया, तो दूसरी ओर उसे ससीम भी कर दिया।[4] अनेक देवी-देवताओं की वृद्धि हुई,

---

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६३

२- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ५० ,   चाबुक- पृष्ठ- ८६

३- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ५०

४- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ५३-५४

चारित्रिक पतन आरंभ हुआ, विचारों की उच्चता न रही, पुराण-उपाख्यान साधारण उपन्यास की तरह पढ़े जाने लगे, उनके भीतरी रहस्य से जनता अनभिज्ञ रही, अहंकार, हठ, आडंबर आदि ने सिर उठाया, तथा शूद्रों की दशा क्षुद्र होती गई। आशय यह कि वैष्णव धर्म की उदारता के परिणाम-स्वरूप भारत दुर्बल हो गया।[1] किसी वृहत्‌ या व्यापक वस्तु अथवा धर्म से, ससीम वस्तु या धर्म हार जाता है।[2] अतः उक्त परिणाम अवश्यंभावी था।

आधुनिक काल में भारत को जागृत करनेवालों में, श्री रामकृष्ण परमहंस, श्री दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द आदि का प्रमुख योग रहा। उन्होंने वैदिक-ज्ञान-राशि द्वारा अज्ञान के अंधकार का नाश किया।[3] अतएव यहां से भारत के धार्मिक इतिहास का नया अध्याय आरंभ हुआ।

इस देश में धर्म, कभी अपराजेय नहीं रहा।[4] 'यतो धर्मस्ततो जय'- भारत में सदैव चरितार्थ हुआ। वस्तुतः भारत में सुधार, ज्ञान द्वारा ही हुआ,[5] यहां आध्यात्मिक दृष्टि ही पतितोद्धार कर सकती है।[6] भारत की उन्नति का प्राचीन रूप, ईश्वर या धर्म-संयुक्त था। वर्तमान भारत को यद्यपि विदेशों के गुण सीखने चाहिएं, परंतु अंधानुकरण के रूप में नहीं, अपनी स्थिति के अनुरूप- अपने सांचे में ढालकर।[7] यौरप की तुलना में भारत की महत्ता यही है कि यह त्यागवादी देश है, इस देश का वेदान्तिक व्यक्तित्व है।[8]

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १७६

२- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ५४

३- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६०

४- वही - पृष्ठ- १४१

५- वही - पृष्ठ- ३१

६- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ६७

७- वही - पृष्ठ- ६८

८- वही - पृष्ठ- ७७-६६

३-९ संस्कृति : निरालाजी के अनुसार[१] भारतीय आर्य संस्कृति रहस्यवाद पर प्रतिष्ठित है । अर्थात् भारत के पौराणिक साहित्य तथा महाकाव्यों में जो रहस्यमय रूपक वर्णित हैं,उनमें जो सत्य अन्तर्निहित है वही आर्य संस्कृति का मूल आधार है ।[२] `पूर्णता`- इस संस्कृति का प्रमुख लक्षण है। भारतीय जीवन तथा विचारधारा,बाह्य एवं आंतरिक दोनों रूपों में सदा इस पूर्णता की ओर प्रवहमान रहे हैं । इस प्रकार असीम भावों एवं कार्यों की व्याप्ति के कारण ही भारतीय संस्कृति का अस्तित्व अनादि काल से अखण्ड[३] रहा है । अत: यह व्याप्ति- इस संस्कृति का दूसरा[४] प्रमुख लक्षण है । संस्कृति सदा गतिशील या परिवर्तनशील रहनी चाहिये । जो लोग उसके जीर्ण-शीर्ण बने रहने पर भी,उसके द्वारा[५] अपनी श्रेष्ठता बताते हैं,उन पर निरालाजी ने कठोर प्रहार किये हैं । यह मानते हुए भी कि काल-परिवर्तन के साथ,उसमें नवीन तत्वों का समावेश होना चाहिये- निरालाजी की यह दृढ़ धारणा है कि नवीन गुणों या तत्वों को ग्रहण कर,उन्हें भारतीय जीवन के अनुरूप,उसके सांचे में ढालना आवश्यक है,अन्यथा मात्र अंधानुकरण,हमारी संस्कृति की घोर पराजय साबित होगी । निरालाजी के अनुसार,[६] युद्ध की हार उतनी बड़ी नहीं जितनी बड़ी बुद्धि और संस्कृति की हार है ।

३-१० सभ्यता : निरालाजी के अनुसार,इस प्राचीनतम भारतीय या हिन्दू

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६१

२- निराला- चयन- पृष्ठ- ७०-७१

३- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ५४

४- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- १७६

५- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ६१

६- वही - पृष्ठ- ६८

सभ्यता के वेदान्तिक भावों ने, जगत के इतिहास में जितनी सभ्यताएं विकसित हुई हैं, उनको प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है।[1] बाह्य दूषित तत्वों के मेल से इस सभ्यता में कई बार विघटन भी हुआ है, अत: यह सभ्यता प्राय: चिरविच्छिन्न रहकर भी देश और काल से निरविच्छिन्न रही है।[2] इसका कारण यह कि यह सभ्यता, पश्चिमी सभ्यता के समान लोभी, जटिल, और परस्व-हारिणी नहीं रही।[3] ज्ञान- इस सभ्यता का मूलाधार है, तथा आदि युग से भारतीय सभ्यता ने अन्य दुखी, पीड़ित देशों को यह ज्ञान दिया है, जिससे जड़ता का नाश और बंधनों से मुक्ति मिलती है।[4]

उक्त विषयों को अधिक स्पष्टता से समझने के हेतु, निरालाजी ने जिन अन्य तत्वों पर विचार किया है-उनका अध्ययन एवं अनुशीलन करना उपयोगी होगा।

३-११ विज्ञान तथा जड़वाद : पश्चिम में, आधुनिक विज्ञान की प्रगति विशेष रूप से हुई है। वहां के वैज्ञानिक पांच तत्व मानते हैं- पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाश। भारतीय दृष्टि से ये पंच महाभूत कहलाते हैं। पश्चिम के आधुनिकतम आविष्कार इन्हीं पंचतत्वों के आधार पर किये गये हैं। आज वे परमाणु तक पहुंच गये हैं, परंतु यह नहीं बता सकते कि उसे चलानेवाला कौन है? उसकी गति कहां से आती है ? अत: वहां का

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १३२ , प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ५०
२- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ६१
३- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १३०
४- वही - पृष्ठ- १३१

विज्ञान अधूरा है,वह अभी जड़ वस्तु (Matter) से ऊपर नहीं उठा है ।[1] परंतु भारत इस स्थिति से ऊपर उठा है,उसने जड़ को गतिमान करनेवाले चेतन तत्व की खोज की है ।[2] जिन महापुरुषों ने यह खोज की है,वे निश्चय ही महान् विज्ञानवादी थे । इस दृष्टि से निरालाजी ने विज्ञान के[3] दो रूप बताये हैं- १- जड़ विज्ञान , २- आत्म विज्ञान या सत्य विज्ञान । श्री राम-कृष्ण परमहंस या स्वामी विवेकानन्द समान सत्य-विज्ञानवादी,सत्य का पूर्ण दर्शन करते[4] थे,परंतु आधुनिक जड़-विज्ञानवादी सत्य का अपूर्ण दर्शन ही कर पाते हैं । निरालाजी के अनुसार,यद्यपि विज्ञान के उक्त दोनों रूपों का प्रसरण-ढंग भिन्न है,तथापि न्यायतः दोनों एक ही हैं,क्योंकि दोनों का लक्ष्य,मनुष्य जाति को सबल,पुष्ट, तथा मेधावी बनाना है । परंतु आत्म-विज्ञान चेतन होने के कारण अधिक पूर्ण,चिरंतन तथा कल्याणकारी है ।[5] पश्चिम[6] में जड़-विज्ञान की सत्ता के कारण यद्यपि नास्तिकता का साम्राज्य है,तथापि,उससे सुपरिणाम की[7] ही संभावना है,क्योंकि चरम नास्तिकता और[8] चरम आस्तिकता एक ही हैं । उन्हें केवल एक कदम और आगे बढ़ना है ।

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- २६-३०

२- वही - पृष्ठ- ४६-४७

३- वही - पृष्ठ- १३१

४- वही - पृष्ठ- ४८

५- वही - पृष्ठ- १३०-१३१

६- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ५१

७- वही - पृष्ठ- ५५

८- वही - पृष्ठ- ५५

ऐतिहासिक तथ्यों का आधार लेकर निरालाजी ने बताया है कि १९ वीं तथा २० वीं शताब्दी में पश्चिम, जड़ाश्रय विज्ञान के आधार पर जगत को लक्ष्य-भ्रष्ट कर रहा है।[१] परंतु जड़वाद की उन्नति का परिणाम सदा ध्वंस में हुआ है, क्योंकि शरीर तथा शरीर-सुख ही जड़वाद का मूल लक्ष्य है, जिसके परिणामस्वरूप अंत में शरीर, शरीर सुख के साधन तथा उन्नति तीनों का अंत होता है। बहिर्मुखी जड़वादी विज्ञान, संसार का अभाव दूर करने निकला, परंतु विडंबना यह कि अधिक अभाव की सृष्टि हुई[२]। वस्तुत: मनुष्य-वृत्ति,[३] अभाव की पूर्ति के लिये भोग की ओर आकृष्ट होती है, फलस्वरूप और लालसा बढ़ती है क्योंकि भोग द्वारा मनुष्य, तृप्ति नहीं प्राप्त कर सकता।[४] परिणामस्वरूप विद्रोह होता है,[५] अशान्ति और संघर्ष[६] का जन्म होता है, तथा परिणति ध्वंस में होती है। आशय यह कि जड़वाद या भोगवाद का ल[७] लक्ष्य जड़ या भोग होता है, इसीलिये वह अपने लक्ष्य से नीचे गिरता है, भोग की गति भी[८] नीचे की ओर ही होती है, उससे पाप का निर्माण, तथा पतन होता है। इसके विपरीत चेतनवाद का लक्ष्य चेतन होता[९] है, और वह जड़ का विरोध करने के स्थान पर उसकी उन्नति करता है।

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ४५
२- वही - पृष्ठ- ५
३- वही - पृष्ठ- ७०
४- वही - पृष्ठ- ७३
५- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ७७
६- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ५
७- निराला- चयन- पृष्ठ- १८६
८- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- २५३
९- निराला- चयन- पृष्ठ- १८६-१८७

३-१२ <u>धर्म</u> : निरालाजी के अनुसार धर्म का स्वरूप समयानुसार परिवर्तित होता रहता है । भारत में यह तथ्य विशेष रूप से दृष्टव्य है । पुराण तथा बुद्ध,शंकर,रामानुज आदि के धर्म-प्रवर्तन उक्त विशेषता के प्रमाण हैं ।[1] धर्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है कि जिसके द्वारा अर्थ,काम और मोक्ष - तीनों की प्राप्ति हो सके,वही सच्चा धर्म है ।[2] रूढ़ियां,जो कि अपने समय की मात्र सामाजिक श्रृंखलाएं हैं - कभी धर्म नहीं हो सकतीं ।[3] भारतीय नारी की करुण दशा देखकर,उन्होंने उसके उद्धार को ही सही धर्म माना है ।[4] पुरुषों के साथ-साथ उनकी उन्नति के फलस्वरूप,हृदय और मस्तिष्क दोनों का एकीकरण संभव हो सकेगा ।[5] वे, जो बाह्य विभूति की मूर्तियां हैं,लक्ष्मी तथा सरस्वती की कृतियां हैं,स्वतः शक्तिशाली तथा उन्नत बनकर,पुरुषों में भी शक्ति-संचार कर सकती हैं ।[6]

३-१३ <u>हिन्दुत्व</u> : हिन्दू समाज के दो हजार वर्ष के पतन-क्रम का अनुशीलन करते हुए निरालाजी ने बताया है कि इस काल के अन्तर्गत,अनुशासन,घोर कट्टरता में बदल गये । तपस्या में रूक्षता,पांडित्य में प्रगल्भता,वीर्य में दम्भ,व्यवसाय में धूर्तता,सेवा में आलस्य,तथा संघटन में उच्छृंखल स्वातंत्र्य का प्रवेश हो गया । संक्षेप में,गुण की अपेक्षा दोषों की वृद्धि हो

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ३५

२- वही - पृष्ठ- ६२

३- वही - पृष्ठ- ६२

४- वही - पृष्ठ- ६२

५- वही - पृष्ठ- ८६

६- वही - पृष्ठ- ६४

हो गई ।[1] वस्तुत: हिन्दुओं के ज्ञान-रहित मिथ्या आचरण ने ही उन्हें गुलाम बनाया । यदि पश्चिम का पतन जड़ विज्ञान के कारण हुआ, तो हिन्दू समाज अज्ञान के कारण अवनति को प्राप्त हुआ ।[2] निरालाजी के अनुसार, अत्यंत प्राचीन एवं संसार व्यापी हिन्दू-सभ्यता[3] की अवनति का या हिन्दुओं की पराधीनता का कारण, उनकी मानसिक दुर्बलता है ।[4] यह मानसिक स्थिति मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व नहीं थी,[5] परंतु उसके बाद वे सीमाओं में बंधकर कमज़ोर[6] होते चले गये, परिणामस्वरूप मुसलमानों के आगे पराजित होना पड़ा । परंतु हजार वर्ष के मुसलमानी शासन के बावजूद भी हिन्दू जाति मृत न होने का कारण- उस जाति के सदाचरण, सच्चरित्रता, दिव्य-भाव और शुभ-संस्कार आदि गुण ही हैं ।[7] वस्तुत: हिन्दु जाति अपने आदिकाल से निर्मल आत्मा की प्राप्ति के लिये प्रयत्नवान रही है ।[8] परंतु फिर भी वर्तमान हिन्दू जाति अभी तक दूषित है, अतएव उसे सुधारने तथा उन्नत बनाने के लिये वर्तमान सभ्य संसार के नवीन प्रवाहों का उपयोग करना आवश्यक है ।[9]

३-१४ <u>राष्ट्र</u> : पराधीन भारत को दृष्टि में रखते हुए निरालाजी की यह

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- २५४

२- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- ३२

३- वही - पृष्ठ- ५०-५१

४- वही - पृष्ठ- ५१

५- वही - पृष्ठ- ५३

६- वही - पृष्ठ- ५४-५५

७- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १४३

८- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १४०

६- वही - पृष्ठ- १७१

दृढ़ मान्यता है कि कोई भी राष्ट्र तभी स्वाधीन हो सकता है जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य वर्णों में जागृति हो, अर्थात् जब उस राष्ट्र की मेधा पुष्ट, शासन स्वाधीन सुदृढ़, और वाणिज्य स्वायत्त तथा प्रबल हो।[1] इसके बहुमुखी, बहुस्तर-स्पर्शी साहित्य[2] एवं राष्ट्रभाषा द्वारा राष्ट्र का निर्माण अपेक्षित है।[3] प्राचीन भारत-राष्ट्र के निर्माण तथा प्रगति में स्त्रियों का विशेष योग रहा है[4] अतः निराळाजी के अनुसार, आधुनिक भारत को सुदृढ़ बनाना भी नारियों का परम कर्त्तव्य है।[5]

३-१५ <u>नवीनता :</u> निराळाजी, आरंभ से अंत तक नवीनता के उपासक रहे। नाविन्य की आकांक्षा और जीर्ण-शीर्ण के प्रति विद्रोह- उनके व्यक्तित्व का एक अभिन्न तत्व था। उन्होंने सामाजिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में जिस नवीनता का साग्रह परिचय दिया है, वह उल्लेखनीय तथा चिरस्मरणीय है। उनके अनुसार, रूढ़ियों के प्रति-जीर्णता के रूप में प्रमाणिकता, या प्रमाणिकता के रूप में जीर्णता- सनातन वस्तु नहीं है। वस्तुतः नवीनता ही सनातन है।[6] नवीनता संस्कृति की आभा होती है, जो स्वयं कभी जीर्ण नहीं होती। यद्यपि मात्र वाद के रूप में नवीनता का स्वीकार निराळाजी को मान्य नहीं है।[7]

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- १७९-१८०
२- वही - पृष्ठ- १६
३- वही - पृष्ठ- ४४
४- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- १५४-१५५
५- वही - पृष्ठ- १५८
६- वही - पृष्ठ- १७६
७- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ६६

~~नवनता~~ नवीनता की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए निरालाजी ने स्पष्टता की है कि,सत्य सदा नवीन होता है,अत: भारतीय संस्कृति के उच्च मूल्यों की जो धरोहर- हजारों शताब्दियों पूर्व भारत के ऋषि-मुनि सत्य-साक्षात्कार द्वारा हमें सौंप गये हैं- वे मूल्य आज की नवीनता से भी नवीन हैं।[1] जितना पीछे है,उतना ही आगे हो,अर्थात् जो चिरन्तन हो,वही सत्य है। अतएव निरालाजी के अनुसार,जो सर्व प्रथम दृष्टि-समक्ष हो,वही सबसे अधिक नवीन है।[2] आशय यह कि सत्य ही नवीनता का आधार होने के कारण,नवीनता एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगी या सर्वतोमुखी होती है।[3] इसीलिये वह जाति को आत्मा के भीतर से संस्कृत कर देती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि निरालाजी का चिन्तन-क्षेत्र व्यापक होने के साथ-~~सत्थ~~ उनकी पर्यवेक्षण-शक्ति सूक्ष्म,तथा दृष्टि मौलिक है। इन विचारों की अभिव्यक्ति काव्य में किस प्रकार हुई है,यह निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है।

निरालाजी ने भारत के गौरव तथा वैभव का चित्र अनेक स्थानों पर प्रस्तुत किया है। इस देश के वास्तविक स्वरूप को,उसकी गौरवशाली परम्परा बताते हुए वे कहते हैं-

> 'क्या ये वही देश है -
> भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र ---
> श्रीमुख से कृष्ण के सुना था[4] जहां भारत ने
> गीता-गीत सिंहनाद ----

इस देश में अनेक परिवर्तन हुए-

> 'यह वही देश है
> परिवर्तित होता हुआ ही[5] देखा गया जहां
> भारत का भाग्य चक्र ---

१- निराला - प्रबंध प्रतिमा - पृष्ठ-४१, २- वही - पृष्ठ-४१, ३-वही - पृष्ठ-४६
४- निराला - अनामिका - पृष्ठ-३०, ५८ ५- वही - पृष्ठ-५८

यहां की नारियों ने अद्भुत त्याग और बलिदान का परिचय दिया,[1] यहां भोग-विलास की भी उदात्त और सुंदर अभिव्यक्ति हुई,[2] परंतु दुर्भाग्यवश उस विशाल परम्परा को भारत भुला बैठा है -

"भूले वे मुक्त-प्रान-साम-गान,सुधा-पान ---"[3]

बाह्य देशों के आक्रमण,तथा उनकी नीच बुद्धि का यह देश कई बार शिकार बना है -

"आये वे निर्वेदन,दिशि-दिशि से निशि के ठग---
गया लुट सकल संबल,शक्तिहीन तन निश्चल----"[4]

अत: अब सम्हलना आवश्यक है -

"मिला ज्ञान से जो धन,नहीं हुआ निश्चेतन
बांधो उससे जीवन,साधो पग-पग यह डग"[5]

निरालाजी की सांस्कृतिक चेतना के स्वर तो प्राय: समस्त रचनाओं में बिखरे हुए हैं। परंतु विशेष रूप से तीन रचनाओं में यह स्वर सर्वाधिक पुष्ट रूप में देखा जा सकता है- १- तुलसीदास, २- यमुना के प्रति , ३- महाराज शिवाजी का पत्र । अत: इन रचनाओं के आधार पर संक्षेप में निरालाजी की सांस्कृतिक चेतना को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है-

"तुलसीदास" में,सूर्य को संस्कृति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते

१- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ५६
२- वही - पृष्ठ- ६०
३- वही - पृष्ठ- ३०
४- निराला- गीतिका- पृष्ठ- ८१
५- वही - पृष्ठ- ८१

( )

हुए आरंभिक छन्दों मे ऐतिहासिक अनुशीलन द्वारा सूर्य रूपी संस्कृति का अस्त बताकर भारत का यह रूप बताया है : -

संबध्द देश-बल - चूर्ण - चूर्ण --
संचित जीवन की क्षिप्रधार
इस्लाम सागराभिमुख पार ----- १

भारतीय संस्कृति पर छायी हुई मुस्लीम संस्कृति के नाश द्वारा ही प्रकाश की प्राप्ति का संकेत करते हुए,[२] तुलसीदास की आत्म-चेतना का संघर्ष बताकर, तथा रत्नावली को प्रेरणा-मूर्ति के रूप में चित्रित कर, पुन: उस सांस्कृतिक सूर्य का उदय बताया है.[३] 'तुलसीदास' में प्रकाश के इस अस्त से उदय के आयोजन में भारतवर्ष के अतीत का चित्रण इस प्रकार किया, गया है कि वह अतीत भारत की दुरवस्था के साथ साथ आधुनिक दुरवस्थाग्रस्त भारत के चित्र को भी व्यंजित करता है. साथ ही यह भी प्रमाणित करता है कि निरालाजी आधुनिक भारत के समुध्दार के विषय में आस्थावान थे, क्यों कि वे मूलत: आशावादी कवि थे, और घोर अभाव तथा निराशा से भरे जीवन में भी सदा आशावादी रहें.

---

१ - निराला - तुलसीदास -पृष्ठ -१४.

२ - वही - पृष्ठ -२७.

३ - वही - पृष्ठ -६१.

' यमुना के प्रति ' कवितामें निरालाजी ने भावोन्मुख-रहस्यवाद के स्तर पर भारत की संस्कृति के अनेक प्राचीन उज्वल पृष्ठों को उलटने का प्रयास किया है -

' यमुने तेरी इन लहरों में, किन अधरों की आकुल तान
पथिक-प्रिया-सी जगा रही है, उस अतीत के नीरव गान ?[१]

इस काव्य में निरालाजी ने भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों का, अत्यन्त उदात्त स्तर पर उद्घाटण किया है. इसके मूल में निरालाजी का आशय, वर्तमान सुषुप्त भारत को, प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति सचेत कर-जागृत करना है.

' महाराज शिवाजी का पत्र ' में प्रखर राष्ट्रीय चेतनाके साथ ओ -

---

१ - निराला - परिमल - पृष्ठ -४५.

-जस्वी हिन्दू संस्कृति का उद्घोष देखा जा सकता है। मुस्लिम सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध महाराज जयसिंह को सचेत करते हुए शिवाजी कहते हैं -

"जारी रहा ऐसा यदि अत्याचार, महाराज,
निश्चय है, हिन्दुओं की कीर्ति उठ जायगी, -
चिह्न भी न हिन्दू-सभ्यता का रह जायगा---"[1]

यह जन्मभूमि बलिदान चाहती है, परंतु हिन्दुओं द्वारा हिन्दुओं के प्राणों की बलि नहीं, अपितु उस जाति की जो विदेशी है- अत्याचारी है - अतएव-

"जयसिंह, सिंह हो तुम, खेलो शिकार खूब हिरनों का
याद रहे - शेर कभी मारता नहीं है शेर ,
केसरी, अन्य वन्य पशुओं का ही शिकार करता है।"[2]

भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता बताते हुए महाराज शिवाजी कहते हैं कि हमारा आपसमें आकर्षण ही विदेशियों के विरुद्ध लड़ने में सहायक होगा -

"एक एक कर्षण में बंधा हुआ चलता है
एक-एक छोटा परिवार, और उतनी ही सीमा में
बंधा है अगाध प्रेम -धर्म-भाषा-वेश का ,
और है विकर्षणमय सारा संसार हिन्दुओं के लिये ---"[3]

जहां तक सभ्यता का प्रश्न है, निरालाजी ने काफी व्यंग तथा कटाक्ष द्वारा उसके खोखलेपन को दिखाया है। वैदिक काल से भारतीय सभ्यता का की विकास-क्रम बताते हुए वे कहते हैं -

---

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २२६
२- वही - पृष्ठ- २२४
३- वही - पृष्ठ- २३४

'वेदों का चर्खा चला, सदियां गुजरीं,
गुफाओं से घर उठाये- ऊंचे से नीचे उतरे---
जंगल से बाग और उपवन तैयार किये----
वैदिक से संवर- दी भाषा संस्कृत हुई---
नियम बने, शुद्ध रूप लाये गये ----
वेदों के बाद जाति चार भागों में बंटी,
यही रामराज है।[1]

इस प्रकार विकास होते-होते यह स्थिति आई -

'जनता पर जादू चला, राजे के समाज का
लोक नारियों के लिये रानियां आदर्श हुई,
धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ,
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर
खून की नदी बही -----'[2]

पश्चिम की पूंजीवादी सभ्यता ने -

'जान खींची खानों से, कल और कारखानों से---'[3]

क्योंकि उस सभ्यता का मूल लक्ष्य उपनिवेशवाद था -

'बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया
टापू में चलकर रखा और कैद किया
एक का डंका बजा, बहुतों की आंख झपी---'[4]

१- निराला- नये पत्ते - पृष्ठ- ३८

२- वही - पृष्ठ- ३२

३- वही - पृष्ठ- २६

४- वही - पृष्ठ- २६

भारत पर इसका परिणाम यह हुआ -

'चेहरा पीला पड़ा, रीढ़ झुकी, हाथ जोड़े
अंख का अंधेरा बढ़ा, सैंकड़ों सदियां गुजरीं ---'[1]

अन्तत: निष्कर्ष यह कि -

'दगा की इस सभ्यता ने दगा की।'[2]

इस पतनमूलक सभ्यता के मूल में निहित वैज्ञानिक जड़वाद का स्वरूप स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं -

'आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिये खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन --------'[3]

इस सभ्यता की तथा जड़वाद की विडंबना यह है कि समस्त संसार में अहंकार, अशान्ति, संघर्ष तथा कोलाहल मचा हुआ है -

'दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण
हंसते हैं जड़वाद-ग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर -------'[4]

राष्ट्र के निर्माण में हाथ बंटाने के लिये स्त्रियों को आवाहन किया गया है, तथा बंधनों को तोड़ने की सलाह दी गई है -

---

१- निराला- नये पत्ते - पृष्ठ- ३५
२- वही - पृष्ठ- ३६
३- निराला- अणिमा- 'भगवान बुद्ध के प्रति'
४- वही

'तोड़ो, तोड़ो कारा----
गृह, गृह की पार्वती ,
पुन: सत्य-सुंदर-शिव को संवारती
उर-उर की बनो आरती --------'[१]

राष्ट्र के निर्माण में भाषा का महत्व प्रकट करते हुए, नयी चेतना भरने के लिये भाषा की वंदना की है -

'बंदूं पद सुंदर तव----
जननि, जनक-जननि-जननि
जन्मभूमि भाषे ------'[२]

और अंत में जीर्ण-शीर्ण, अंधकार, अज्ञान आदिके नाश तथा नवीन मूल्यों की स्थापना की कामना की है -

१- 'जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन
क्या करूंगा तन जीवनहीन-----'[३]

२- 'नव गति, नव लय, ताल छन्द नव-----नव पर, नव स्वर दे ---'[४]

नवीनता की कामना केवल भारत ही नहीं, अपितु समस्त संसार के कल्याण के हेतु की गई है -

'कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर, जगमग जग कर दे'[५]

१- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १३७
२- निराला- गीतिका- पृष्ठ- ८३
३- वही - पृष्ठ- ३६
४- वही - पृष्ठ- ३१५८
५- वही - पृष्ठ- ३

नवीनता के संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि केवल वादों के रूप में प्रचलित नवीनता पर निरालाजी ने कठोर प्रहार किये हैं।[१]

रहस्यवाद और नवीनता के अतिरिक्त `स्वतंत्रता`- निरालाजी के विराट व्यक्तित्व का अभिन्न तत्व कहा जा सकता है। आरंभ से अंत तक वे विचार और कर्म दोनों में स्वतंत्र रहे। कहा जा सकता है कि नवीनता की आकांक्षा ही उन्हें स्वतंत्र होने प्रेरित करती थी, अथवा उनकी स्वतंत्र-चेतना ही नवीनता में परिणत होती रही होगी। यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय तथ्य यही है कि इन दोनों तत्वों का मूलाधार, रहस्यवाद ही था।

स्वतंत्रता की चेतना की व्यापकता ने, मृत्यु तक को निरालाजी के लिये एक मधुर तथा वरेण्य कल्पना बना दिया था। निरालाजी ने यदि एक ओर सामान्य रूप से, जीवन के छोर पर खड़े रहकर, जीवन तथा मृत्यु दोनों का अवलोकन किया है, तो दूसरी ओर मृत्यु के छोर पर खड़े रहकर भी जीवन तथा मृत्यु का दर्शन किया है। आशय यह कि निरालाजी ने स्वतंत्रता तथा मृत्यु- दोनों को उनके लौकिक या भौतिक धरातल से उठाकर, उनका औपनिषदिक दृष्टि से आध्यात्मिक या दार्शनिक धरातल पर विचार किया है। स्वतंत्रता के उक्त रूप के लिये उन्होंने `मुक्ति` शब्द का प्रयोग किया है। अत: `मृत्यु`, और `मुक्ति`- दोनों के विषय में निरालाजी के विचारों का अध्ययन एवं अनुशीलन करना आवश्यक है।

३-१६ मृत्यु : इस विषय पर पश्चिम के अस्तित्ववादी

१- निराला- नये पत्ते - पृष्ठ- २५,६३ , प्रबंध प्रतिमा- `भूमिका`

विचारकों ने विशेष चिन्तन किया है। अस्तित्ववादी साहित्य में मृत्यु-प्रधान विषय रहा है। इस विषय के चिन्तन का आरंभ प्रसिद्ध अस्तित्ववादी विचारक Kierkegaard से माना जाता है।[1] सामान्य रूप से इन विचारकों की विचारधारा यह है कि, मृत्यु अवश्यंभावी है, और प्रत्येक मनुष्य उसके प्रति सचेत है। यद्यपि मनुष्य, उसके परे क्या है, यह स्पष्टता से नहीं देख पाता। वह, 'जो है' उस स्थिति में रहकर मृत्यु से गुजर नहीं सकता। अधिक से वह मृत्यु को वैद्यक शास्त्र की सहायता से टालने का प्रयास कर सकता है, परंतु वह प्रयास भी अंततः निष्फल ही प्रमाणित होता है। आशय यह कि मृत्यु, मनुष्य के सिर पर तलवार की तरह लटकती रहती है, परंतु मनुष्य कुछ नहीं कर पाता।[2] इस विषय पर Christian और non-christian[3] दोनों प्रकार के अस्तित्ववादियों ने विचार किया है। यहां अत्यन्त संक्षेप में कतिपय प्रमुख अस्तित्ववादी विचारकों एवं साहित्यकारों के दृष्टिकोणों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

प्रमुख विचारक हैडेगर के अनुसार 'मृत्यु तक अस्तित्व'[4] (Being unto death), मानव-अस्तित्व का प्रमुख वैशिष्ट्य है। जब कि R. Jolivet ने इस विषय पर हैडेगर तथा सार्त्र के दृष्टिकोण का अंतर बताते हुए कहा है कि, हैडेगर की दृष्टि में मृत्यु, तर्क-संगत महत्व या अर्थवत्ता (Logical Significance) से पूर्ण है, तथा वह समस्त मानव-अस्तित्व को रूप प्रदान करती है।

1- Wild John - Existence and the World of Freedom - P. 27

2- Ibid - P. 27

3- Kingston Temple F. - French Existentialism - P. 43

4- Heidegger. M. - Sein und Zeit - 1949
Erste Hälfte, Tübingen: Neomarius, 6th ed.

इसके विपरीत सार्त्र के अनुसार जन्म के समान मृत्यु का भी कोई तर्क-संगत महत्व नहीं हो सकता । जन्म के समान मृत्यु भी एक वाहियात (Absurd) तथ्य है, क्योंकि उसका कोई तर्क-संगत प्रमाण (Logical justification) नहीं है । अतएव मृत्यु को, व्यक्तिगत कल्पना के रूप में नहीं स्वीकारा जा सकता । वह मात्र एक वाहियात शक्ति है, जो व्यक्ति को उठा लेती है ।[1] संक्षेप में सार्त्र का निष्कर्ष यह है कि, हमारा जन्म हुआ था यह बात[2] जितनी वाहियात है उतनी यह भी, कि हमारी मृत्यु होगी ।

उपनिषदों में मृत्यु को नैसर्गिक स्थिति या नैसर्गिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है । उपनिषदों के अनुसार मृत्यु भी प्रकृति की लय का ही एक अंग है ।[3] अत: समुद्र के ज्वार के समान मृत्यु को रोकना भी अशक्य है ।[4] मृत्यु के प्रति यह दृष्टिकोण विशेष महत्व रखता है, क्योंकि वस्तुत: आदिकालीन विचारों (Primitive Mind) के अनुसार मृत्यु को आकस्मिक, हिंसाजन्य, अथवा जादू-टोटक का परिणाम माना जाता था ।[5] परंतु इसके विपरीत उपनिषदों में मृत्यु के सर्वभौम राज्य की कल्पना की गई है । इस पृथ्वी पर जो भी है वह मृत्यु के लिये भोज्य-पदार्थ है ।[6] आशय यह कि उपनिषद के ऋषियों की दृष्टि में मृत्यु - प्रकृतिजन्य होने के कारण ही कभी भय का कारण नहीं रही । अमरत्व की कल्पना का मूल भी उक्त विश्वास में निहित है ।

1- Kingston Temple F. - French Existentialism - P. 43

2- Sartre J. P. - L'Etre et le neant - P. 631, Paris, Bibilothèque des Idées - 1943

3- Jordens J. - 'Death in the Upanisads' - From: 'Journal of the Oriental Institute,' M. S. Uni: of Baroda, Vol: XIV, March-June 1965, Nos - 3-4, P. 297

4- Maitri Upa: 4/2

5- James E. O. - Comparative Religion - Revised Ed. London. 1961. P. 278

6- बृहदारण्यक उपनिषद् - 1/2/10

उपरोक्त दृष्टिकोण या विश्वास की पुष्टि नचिकेता के आख्यान द्वारा होती है। मृत्यु की स्वाभाविकता का उल्लेख करते हुए उसने मृत्यु की स्वाभाविकता का संकेत एवं उसकी प्रक्रिया का स्पष्टीकरण पके हुए आम के उदाहरण द्वारा दिया है।[1] इसी प्रकार वस्तु के पकने की कल्पना के आधार पर मृत्यु की प्रक्रिया का उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद् में भी मिलता है।[2] परंतु छान्दोग्य उपनिषद् में मृत्यु को, उक्त निष्क्रिय (Passive) रूप से भिन्न बताने का प्रयास किया गया है। उसके अनुसार स्वयं व्यक्ति, स्वयंप्रकाशित होकर, अपनी चेतना द्वारा शरीर का त्याग करता है।[3]

मृत्यु से संलग्न कतिपय अन्य तत्वों का भी उपनिषदों में उल्लेख मिलता है। यथा- जरा[4], शोक[5], पाप[6], आदि। इसके अतिरिक्त उपनिषदों में मृत्यु को- इन्द्र, वरुण, रुद्र, पर्जन्य, यम, आदि के समान विश्व-शक्ति (Cosmic Power) के रूप में स्वीकार किया गया है।[7]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मृत्यु की अत्यन्त विशिष्ट कल्पना उपनिषदों में की गई है। एक ओर यदि यह कहा गया है कि सभी कुछ मृत्यु

१- कठोपनिषद् - १-१-६

२- बृहदारण्यक उपनिषद्- १-५-२

३- छान्दोग्य उपनिषद्- ८-१३-१

४- बृहदारण्यक उप० - ३-५-१ , छां०उ०, ८-१-५ , ८-४-१, ८-७-१ , श्वेताश्वतर उप०- २-१२-१, मुंडक उप०- १-२-७, मैत्री- १-३,६-२५, ७-५,७-७, कठोपनिषद्- १-१-१२,१-१-१७

५- बृ०उ०- ३-५-१,छां०उ०-८-१-५,८-७-१,कठो०-१-१-१२,१-१-१८,मैत्री-१-३, ६-२५,७-५,७-७,७-११

६- बृ०उ०- १-३-१०-११ , १-५-२३ , ७- वही - १-४-११

का भक्ष्य है`- तो दूसरी ओर मृत्यु को जल (प्रलय) का भक्ष्य भी माना गया है।[1] इसका आशय यही कि इस पृथ्वी की समस्त वस्तुएं,प्राणी,पदार्थ आदि नाशवान हैं अथवा मृत्यु के भक्ष्य हैं। जल का भक्ष्य मृत्यु है,अर्थात् जल- जो कि जीवन का दूसरा रूप माना जाता है,या जो स्वयं जीवन-तत्व है- वही मृत्यु का भक्षण करता है। अर्थात् जीवन- मृत्यु का,तथा मृत्यु ही जीवन का भक्ष्य है। दूसरे शब्दों में इस पृथ्वी पर जो`अस्तित्व`,जीवन और मृत्यु की सतत लय द्वारा[2] संचालित है,वह इन दोनों के परस्पर भक्षित होने का परिणाम है।

निरालाजी के मृत्यु संबंधी विचारों में उपरोक्त औपनिषदिक विचारधारा का पल्लवन देखा जा सकता है। उनके अनुसार,मृत्यु के साथ, मानव जीवन का अंत नहीं हो[3] जाता,अपितु वस्तुतः मृत्यु,नवीन जन्म प्रदान करती है,शक्ति स्वरूपा है। उनकी यह दृढ़ मान्यता है कि मृत्यु का भय रखकर ज्ञान की प्राप्ति असंभव है। अतएव नचिकेता के समान मृत्यु[4] को वरेण्य मानकर,ज्ञान-प्राप्ति के हेतु तत्पर रहना ही अधिक श्रेयस्कर है।

मृत्यु संबंधी निरालाजी की धारणाओं को निम्नलिखित काव्य-पंक्तियों द्वारा अधिक स्पष्टता एवं व्यापकता से समझा जा सकता है।

मृत्यु की`मां` रूप में इस प्रकार कल्पना की गई है -

"मृत्यु-स्वरूपे मां,है तू ही, सत्य-स्वरूपा,सत्याधार ---
मां,तू मृत्यु घूमती रहती -----"[5]

१- बृहदारण्यक उपनिषद् - ३-२-१०

२- Jordens. J- 'Death in the Upanisads'- Journal of the oriental Institute, M.S. Uni: of Baroda- Vol. XIV, March-June-1965, P. 302

३- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- २२

४- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ७०

५- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ११०-१११

मृत्यु-स्वरूपा मां का आवाह्न करते हुए उसके भयानक रूप का वर्णन इस प्रकार किया है -

'एक बार बस और नाच तू श्यामा
भैरवी भेरी तेरी झंझा ,
मृत्य लड़ाएगी जब तुझसे पंजा----'[1]

इस प्रकार निरालाजी ने अन्य काव्य-रचनाओं में भी मां के रूप में मृत्यु की कल्पना की है।[2] मृत्यु के प्रति निडरता की अभिव्यक्ति,स्वामी विवेकानन्द की कविता के अनुवाद द्वारा की गई है -

'भय नहीं खाता कभी,जन्म और मृत्यु मेरे पैरों पर लोटते हैं'[3]--- मृत्यु से डरने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वह तो मुक्ति प्रदान करने वाली है -

'दिये थे जो स्नेह-चुंबन
आज प्याले गरल के घन ,
कह रही हो हंस - 'पियो,प्रिय,पियो,प्रिय,[4]निरुपाय
मुक्ति हूं मैं,मृत्यु मैं आई हुई,न डरो'----

इसीलिये निरालाजी अत्यन्त आत्मविश्वास के साथ मृत्यु की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं -

'मरण को जिसने वरा है,उसीने जीवन भरा है
परा भी उसकी,उसी के अंक,सत्य यशोधरा है ----'[5]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- १५०
२- निराला- नये पत्ते- पृष्ठ- ६१ , अर्चना- पृष्ठ- ११७
३- निराला- अनामिका- पृष्ठ- ६५ , ४- वही - पृष्ठ- १३६
५- निराला- अणिमा- पृष्ठ-

मृत्यु तो संसृति का सुष्ठु रूप है -

'मृत्यु की श्रृंखला ही,संसृति का सुष्ठु रूप----
धीर-पद अवनति ही चरम परिणाम यहां ---'[1]

मृत्यु अन्ततः ज्ञानदायिनी है,अतः वरेण्य है -

'तुम्हारे सुंदरि,कर सुंदर,मिलाये हुए वर अमर-मर ।
अनावृत सुकृत-स्नेह के प्राण,अमृत ही अमृत,ज्ञान ही ज्ञान ,
मृत्यु को अपने ही कर म्लान,कर दिया तुमने प्रिय सुघर ।'[2]

इसीलिये निरालाजी ने मृत्यु की मधुर कल्पना की है -

'मधुर,मधुर,मृत्यु मधुर, सफल जन्म,कंपित उर ----'[3]

इस प्रकार अन्य रचनाओं में भी[4] निरालाजी की,मृत्यु संबंधी काव्यात्मक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है ।

३-१७ <u>ज्ञान</u>: निरालाजी के अनुसार स्वतंत्रता या मुक्ति की परिभाषा[5] एक शब्द में,'ज्ञान' है । अतएव 'मुक्ति' के विवेचन से पूर्व उनके द्वारा विवेचित ज्ञान का स्वरूप भी समझ लेना आवश्यक है ।

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २०७
२- निराला- गीतिका- पृष्ठ- ७१
३- निराला- गीतगुंज- पृष्ठ- ५३
४- निराला- परिमल - पृष्ठ- ६३,१५६,२३५, अनामिका- पृष्ठ- ६३,
गीतिका-पृ०७,२२,७१,६३, अर्चना-पृ०५५,५६,६२, आराधना-गीत-६६ आदि
५- निराला- प्रबंध पद्म-पृष्ठ- १५७

निरालाजी ने ज्ञान के दो रूप बताये हैं - १- खण्ड ज्ञान, २- अखण्ड ज्ञान। खण्ड ज्ञान, स्वप्नवत् असार है, वह वस्तुतः अज्ञान है, परंतु अखण्ड ज्ञान या ज्ञान- एकरस, अपरिवर्तनशील, स्थिर, काल के बंधन से बाहर, प्रवाह या माया से - मुक्त है।[1] ज्ञान की दूसरी विशेषता यह है कि वह कभी पराधीन नहीं होता, वस्तुतः स्वाधीनता की परिभाषा एक शब्द में- 'ज्ञान' ही है।[2] आशय यह कि ज्ञान स्वयं मुक्त है, परंतु जब वह मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार में परिवर्तित होता है, तभी बद्ध रहता है।[3] ज्ञान संसरणशील नहीं होता, स्वप्न ही संसरणशील होता है, क्योंकि ज्ञान होने पर जड़त्व-प्रेम नहीं होता।[4]

निरालाजी के अनुसार, ज्ञान और शक्ति दोनों एक हैं।[5] दोनों का परिणाम अनादि है, तथा दोनों ब्रह्म की तरह निर्लिप्त हैं। सृष्टि का मूल आधार शक्ति है, यह बताया जा चुका[6] है, अतः ज्ञान की सीमा में भी समस्त सृष्टि का समावेश हो जाता है। यहां तक कि सृष्टि की अव्यक्त अवस्था भी ज्ञान ही है,[7] क्योंकि सृष्टि का अव्यक्त रूप स्वयं निराकार ब्रह्म है, और ज्ञान ही ब्रह्म है।[8] आशय यह कि जहां सीमा है वहां ज्ञान का अस्तित्व नहीं होगा, और निस्सीम होने के कारण ही अज्ञान अरूप होता है।[9] वस्तुतः

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १३ , प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ३५

२- निराला- प्रबंध पद्म- पृष्ठ- १५७

३- निराला- संग्रह- पृष्ठ- १५८

४- वही - पृष्ठ- १५६

५- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ७० , ६- वही - पृष्ठ- ४१

७- वही - पृष्ठ- ४१

८- वही - पृष्ठ- ६३ , ९- वही - पृष्ठ- ६६

इस सृष्टि में जड़ और चेतन दोनों का संयोग देखकर, ज्ञान सबके साथ सहयोग करता है।[1] ज्ञान की इस असीमता को देखकर ही निरालाजी ने उसे निरपेक्ष बताया है।[2] ज्ञान सापेक्ष नहीं अपितु निरपेक्ष है, क्योंकि निरपेक्ष ज्ञान के साथ वस्तुओं और विषयों की सापेक्षता रहती है, और[3] इसी के फलस्वरूप संघर्ष, बल-प्रयोग, या रूढ़िबद्धता का जन्म नहीं होता।

निरालाजी ने ज्ञानकाण्ड की पुष्टि के लिये कर्मकाण्ड का महत्व स्वीकार किया है, क्योंकि उनके अनुसार, महत्व और सम्मान की दृष्टि[4] से कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड से नीचे है, वस्तुतः वह ज्ञानकाण्ड की परिणति है। उन्होंने इस ज्ञानकाण्ड के अन्तर्गत[5] ही ~~अस्सिलक~~ आस्तिक तथा नास्तिकवाद दोनों का समावेश माना है।

इस प्रकार विविध दृष्टियों से ज्ञान का समीक्षात्मक अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने यह स्वीकार किया है कि वेदान्त ही ज्ञान का शिखर है। ज्ञान का व्यापक स्वरूप स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि - विश्वमैत्री इसकी शिक्षा, पूर्णता[6] इसका प्राण, तथा हिन्दुओं की विविध शाखाएं इसके विविध अंग हैं। आशय यह कि जीवन का मूल सार यह 'ज्ञान' है,[7] इसके अभाव में जीवन व्यर्थ है, क्योंकि स्वावलम्बन के लिये ज्ञान अनिवार्य है। इसीलिये इसकी प्राप्ति से स्त्रियों को वंचित रखना निरालाजी को मान्य नहीं है।

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६४
२- वही - पृष्ठ- १८
३- वही - पृष्ठ- १९-२०
४- वही -'भूमिका'
५- वही - पृष्ठ- ७०
६- निराला- चयन- पृष्ठ- ६५
७- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ६१

उनके अनुसार स्त्रियां भी ज्ञान की अधिकारिणी हैं,चाहे वह ज्ञान जड़ विज्ञान से संबंधित हो या धर्म-विज्ञान से संबंधित ।[1] आशय यह कि ज्ञान तथा ज्ञान-जन्य कर्म का विस्तार जितना अधिक होगा,व्यक्ति के साथ जाति भी उतनी ही अधिक प्रगतिशील एवं उन्नतिशील होगी ।[2] अन्त में निरालाजी ने यह भी स्वीकार किया है कि मृत्यु का भय रखकर ज्ञान की प्राप्ति असंभव है,नचिकेता के समान मृत्यु[3] को वरेण्य मानकर ही ज्ञान-प्राप्ति के लिये तत्पर रहना आवश्यक है ।

३-१८ <u>मुक्ति</u> : सामान्य रूप से पाश्चात्य विचारकों ने स्वतंत्रता को 'स्व-ऊर्ध्वीकरण' (Self-Transcendence) के अर्थ में लिया है । उक्त स्थिति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने बताया है कि यह मनुष्य की, अस्वीकार करने की वृत्ति और शक्ति का परिणाम होता है,[4] तथा ज्ञान इस प्रकार की चेतना का प्रमुख लक्षण होता है । स्व और पर से ऊपर उठने की,स्वतंत्रता की यह प्रक्रिया[5] विशेष रूप से शास्त्रीय-दर्शन (Academic-Philosophy) से संबंधित है । आशय यह कि 'स्वतंत्रता' भी एक दार्शनिक प्रत्यय (Concept) है,तथा पश्चिम में दर्शन का विषय माना गया है ।

१- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ४१

२- निराला- प्रबंध पद्म-पृष्ठ- ~~७०~~ २१

३- निराला- प्रबंध प्रतिमा- पृष्ठ- ७०

४- Wild John - Existence and the World of Freedom - P. 132

५- Ibid- P- 133

अस्तित्ववादी विचारधारा के अन्तर्गत स्वतंत्रता पर विशिष्ट रूप में विचार हुआ है । स्वतंत्रता को व्यक्ति की स्वतंत्रता के रूप में गृहीत करते हुए इन विचारकों ने दो प्रकार की मान्यताएं प्रस्तुत की हैं । एक दल जो नास्तिक है- स्वतंत्रता को 'मानवीय प्रमुसत्ता'(Human Autonomy) का पर्यायवाची मानता है,तथा व्यक्ति को अपने लक्ष्य (Destiny) का अधिकारी मानकर,भ्रामक कल्पना स्वरूप - ईश्वर की सहायता की परवाह नहीं करता । दूसरा दल,जो ईसाई धर्म से प्रभावित है,व्यक्ति की स्वतंत्रता को[1],ईश्वर के विश्वास के साथ या ईश्वर के संदर्भ में ही स्वीकार करता है । आशय यह कि इन विचारकों की मूल समस्या यह है कि, स्वतंत्रता- एक वरदान है या शाप, एक विशिष्ट स्थिति है या विशिष्ट संबंध । अतएव,ईश्वर सहित स्वतंत्रता विरुद्ध ईश्वर रहित स्वतंत्रता[2] - इन दो रूपों में यह विचारधारा विभाजित की जा सकती है । उक्त दो विचारधाराओं के कतिपय प्रतिनिधि विचारकों के दृष्टिकोणों को संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है ।

हेगल के अनुसार,स्वतंत्रता का[3] गुण मात्र ईश्वर के लिये सुरक्षित है,अथवा दूसरे शब्दों में ईश्वर मुक्त है । मनुष्य की स्वतंत्रता और कुछ नहीं-[4] व्यक्ति की इच्छा का ईश्वर की इच्छा के आगे समर्पण है । हेगल के अनुसार वस्तुत: ईश्वर की इच्छा ही,शक्ति(Spirit) के रूप में,समस्त देश या व्यक्ति -समुदाय में व्याप्त रहती है,तथा आन्तरिक रूप में (From Wilkin) उसकी मनुष्यों पर सत्ता रहती है[5] । वस्तुत? मनुष्य ईश्वर की इच्छा को ही अपने

1- Roberts David E. - Existentialism and Religious Belief - P. 339
A Galaxy Book, New York, Oxford University Press, -1959

2- Ibid- P. 340

3- Molina Fernando - Existentialism as Philosophy -1962- P.11

4- Ed. Loewenberg J. - HEGEL - Selections - 1929 - P. 387

5- Molina Fernando - Existentialism as Philosophy - P. 11

कर्त्तव्यों द्वारा व्यक्त करता रहता है।[१]

प्रसिद्ध ~~ईसे~~ अस्तित्ववादी विचारक किर्केगार्ड के अनुसार, मनुष्य, ईश्वर का ही प्रतिरूप है। स्वतंत्रता का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने भविष्य का निर्माता है, तथा वह सृजन एवं संहार दोनों कर सकता है। स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि मनुष्य का अभाव तथा ईश्वर दोनों के साथ संबंध (Kinship) (संबद्धता) है।[२]

नास्तिकवादी विचारकों के अन्तर्गत सार्त्र की मान्यता यह कि स्वतंत्रता का लक्ष्य, वस्तुत: उस परम सत्ता, या ईश्वर या नित्य-मूल्यों (eternal Values)[३] के साथ सुसंवादिता स्थापित करना नहीं है। परंतु, जो कुछ रहा है और जो है उससे अलग होना ही स्वतंत्रता का मूल लक्ष्य है।[४]

निरालाजी ने स्वतंत्रता का विचार- साहित्यिक, कवि, और दार्शनिक तीनों रूपों में किया है।[५] उनके द्वारा इस विषय पर दार्शनिक रूप में किये हुए विचारों का अध्ययन एवं अनुशीलन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

निरालाजी के अनुसार,[६] स्वतंत्रता के दो रूप हैं- १- बाह्य, और २- आन्तरिक। बहिर्मुखी स्वतंत्रता द्वारा शान्ति की प्राप्ति या परम सत्ता

1- Hegel - Philosophy of Mind - Trans: Wallace - 1894 - P. 119-120

2- Roberts David E. - Existentialism and Religious Belief - P. 73-74

3- Ibid - P. 204

4- Ibid - P. 210

5- निराला - प्रबंध - प्रतिमा - पृ. 9e

6- निराला - संग्रह - पृ. 25 (तुल: स्वामी विवेकानंद - शाक्तदायी विचार - ४ भा. सं. पृ. 31)

का साक्षात्कार संभव नहीं। कारण यह कि इस स्वतंत्रता का वास्तविक रूप भोग है, उससे बहिर्जगत में संघर्ष[1] उत्पन्न होता है, और अंत में वह नाश के लिये कारणभूत सिद्ध[2] होती है। जड़-विज्ञान के अनुगामी-जड़वादी, बहिर्मुखी स्वतंत्रता-प्रिय हैं। भारतीय शास्त्रों में आन्तरिक स्वतंत्रता का पथ-प्रदर्शन किया गया[3] है, क्योंकि उसीके द्वारा परम शान्ति या ब्रह्मपद की प्राप्ति हो सकती है।

निरालाजी के अनुसार आत्मवाद या 'मुक्ति', भारत[4] का प्रमुख लक्ष्य रहा है, तथा मुक्त हुए बिना जीव, स्वतंत्र नहीं हो सकता। अतएव स्वतंत्रता संबंधी अध्ययन के साथ, मुक्ति के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

निरालाजी के अनुसार, हमारे शास्त्रों ने, जीव को, स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये जिन साधनों का उपयोग बताया है, उनमें मुक्ति-साधना का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसके द्वारा सत्य का ज्ञान होता है, और आत्म-दर्शन या ब्रह्म की प्राप्ति में ही सत्य-ज्ञान की पूर्णता मानी गई है।[5] अतः वे यह मानते हैं कि भारत[6] को मुक्ति की ओर ले जानेवाले विचारों में, वेदान्तिक विचार सर्वश्रेष्ठ हैं। इन विचारों के अन्तर्गत ही यह मान्यता रही है कि, सृष्टि, सत् और असत् दोनों का मेल है, तथा असत् ही पुनर्जन्म का कारण है। अतएव[7] इस असत् या कलुष रूप पुनर्जन्म के चक्कर से छुटकारा पाना ही- मुक्ति है। सृष्टि

१- निराला- संग्रह- पृष्ठ- ५

२- वही - पृष्ठ- ५

३- वही - पृष्ठ- ८

४- वही - पृष्ठ- १४

५- वही - पृष्ठ- १४

६- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ७६

७- वही - पृष्ठ- ७४ ,   परिमल- भूमिका- पृष्ठ- १२

में मनुष्य की श्रेष्ठता का प्रमाण यही है कि वह पूर्णता या मुक्ति का अधिकारी है,अत: मनुष्य को जिस धर्म का पालन करने का आदेश दिया गया है, उस धर्म का सच्चा स्वरूप यह पूर्णता अथवा मुक्ति ही है। यद्यपि ऋषियों ने मुक्ति के - ब्रह्म,परमात्मा,निर्वाण,कैवल्यपद, आदि अनेक नाम दिये हैं,[1] परंतु वे इस एक ही अर्थ के द्योतक हैं - पूर्ण ब्रह्म का बोध। आशय यह कि जड़ता के बंधन से मुक्ति पाकर,चेतन[2] या परम तत्व के रूप में- विशिष्ट बंधन-ही मुक्ति का यथार्थ लक्ष्य है।

मुक्ति के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए निरालाजी ने बताया है कि पुनर्जन्म के लिये कारणभूत,[3] कर्म के बंधन से मुक्ति,मनुष्य को ज्ञान के आश्रय से ही मिल सकती है। इन बंधनों से मुक्ति पाने के लिये मनुष्य जब मुक्त-स्वभाव परमात्मा से प्रार्थना करता है,तब निराकार एवं मुक्त परमात्मा[4] को,इस माया-राज्य (संसार) में,साकार रूप में[5] अवतार धारण करना पड़ता है। ये अवतार पुरुष नित्य-मुक्त होते हैं। इस प्रकार निरालाजी ने अवतारवाद का रहस्य भी स्पष्ट किया है।

रवीन्द्रनाथ ने मुक्ति की व्याख्या में जड़ और चेतन दोनों से संबंध बनाये रखने की कल्पना की है - "वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय"। निरालाजी ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि यह पश्चिमी ढंग का

१- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ६६

२- वही - पृष्ठ- ४१

३- वही - पृष्ठ- १००

४- तुल: विवेकानन्द- विविध प्रसंग-१९५३ - पृष्ठ-६७

५- निराला- चाबुक- पृष्ठ- ७४

विचार है,और इस अर्थ में मुक्ति - कवित्व की ठहरती है,बंधन की नहीं ।[१]

मुक्ति ~~कि~~ की कल्पना निराळाजी ने अन्य रूपों में भी की है । पराधीनता से राष्ट्र की मुक्ति की कल्पना के अन्तर्गत स्त्रियों का महत्व बताते हुए उन्होंने कहा है कि इस मुक्ति का सूत्र स्त्रियों के हाथ में है ।[२] इसी प्रकार छन्दों के बंधन से मुक्त होने के रूप में कविता की मुक्ति की कल्पना की है[३], और कविता की मुक्ति के आधार पर भाषा की मुक्ति का भी विचार किया है ।[४]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि निराळाजी ने स्वतंत्रता या मुक्ति संबंधी- दार्शनिक,कवि और साहित्यिक तीनों रूपों में विचार किया है । परंतु उनकी संपूर्ण विचारधारा का मूल यही है कि,ज्ञान स्वयं मुक्त है[५], और ज्ञान की प्राप्ति ही वास्तविक मुक्ति है ।इस दृष्टि से निराळाजी पश्चिम के आधुनिक अस्तित्ववादी विचारकों से भिन्न प्रमाणित होते हैं । निराळाजी के चिन्तन का मूल स्रोत यह जड़ जगत नहीं अपितु अध्यात्म है । पश्चिम का चिन्तन ~~का~~ क्षेत्र जड़ जगत से संबंधित है अत: वह ससीम है,जब कि निराळाजी का चिन्तन-क्षेत्र जड़-चेतन दोनों का समावेश करता है अत: वह अत्यंत व्यापक या असीम है । अस्तित्ववादी विचारकों ~~का~~ के विषय का विषय ही सीमित है, जब कि निराळाजी के विषय का विषय,उसका विचार,तथा विचार की व्याप्ति- तीनों सीमारहित हैं ।

१- निराळा- संग्रह- पृष्ठ- १५७

२- निराळा- प्रबंध प्रतिमा- ६२

३- निराळा- परिमल- भूमिका ~~प~~-पृष्ठ- १२

४- निराळा- चयन- पृष्ठ- ८०

५- निराळा- संग्रह- पृष्ठ- १५८

निरालाजी द्वारा की गई, ज्ञान तथा मुक्ति की काव्यात्मक अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में देखी जा सकती है।

निरालाजी ने इस संसार को अज्ञान का राज्य कहा है।[1] इस अज्ञान का नाश, तथा ज्ञान का उदय तभी होता है जब प्रलय होता है, अर्थात्[2] जब मन, बुद्धि, अहंकार में बद्ध- ज्ञान का प्रलय होता है। जब मनुष्य इस असार ज्ञान के अहंकार से लड़ता है, तभी वह विशुद्ध ज्ञान प्राप्त करता है -

'मन, बुद्धि, अहंकार से है लड़ता जब----[3]
होता है निश्चय ज्ञान -----'

मनुष्य, स्वयं परमात्मा है,[4] 'तत्वमसि' का यह तत्व ही निरालाजी के अनुसार महाज्ञान है।

'भ्रमरगीत', 'जुही की कली', 'शैफालिका', आदि 'परिमल' की कविताओं में निरालाजी ने ज्ञान-प्राप्ति की, अत्यंत उत्कृष्ट काव्यात्मक अभि-व्यंजना प्रस्तुत की है। 'तुलसीदास' में तुलसीदास को जब रत्नावली द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है, तब वे मुक्त हो जाते हैं -

'आनन्द रहा, मिट गए द्वन्द्व, बंधन सब---
थे मुंदे नयन ज्ञानोन्मीलित --------'[5]

ज्ञान-प्राप्ति के बाद -

'जिस कलिका में कवि रहा बंद, वह आज उसी में खुली मंद'[6]

इनके अतिरिक्त[7] अन्य रचनाओं में भी ज्ञान संबंधी काव्यात्मक अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २६०, २- वही - पृष्ठ- २५०
३- वही - पृष्ठ- २५१, ४- वही - पृष्ठ- २६५
५- निराला- तुलसीदास- पृष्ठ- ५५, ६- वही - पृष्ठ- ५६
७- निराला-परिमल- पृ० ६६, ८७, गीतिका-गीत-५१, ६४, आराधना-गीत, ५५

मनुष्य,मुक्त परमात्मा का ही अंश है,अत: वस्तुत: मनुष्य मुक्त है-

"मुक्त हो सदा ही तुम,बाधा-विहीन-बन्ध-छन्द ज्यों"[1]

परंतु मनुष्य,संसार या माया के कूप में फंसे रहने के कारण निरुपाय रहता है-

"यह कूप-कूप भव अंध कूप"[2]

अत: इस कूप से मुक्ति पाना ही अपने वास्तविक ब्रह्म-स्वरूप को प्राप्त करना तथा जन्म-मृत्यु के चक्कर से छुटकारा पाना है -

१- निर्बीज हुआ मैं,पाया स्वरूप निज,मुक्ति कूप से हुई"[3]

२- "मुक्त जो होता है फिर नहीं लौटता"---[4]

संसार की वासना से मुक्त जीव,त्याग के धागे में पिरोयी हुई मुक्ता समान है-

"वासना की मुक्ति,मुक्ता,त्याग में त्यागी"[5]

मुक्ति द्वारा मनुष्य को परम आनन्द की प्राप्ति होती है -

"मुक्त पंख उज्ज्वल प्रभात में,ज्योतिर्मय चारों ओर,
परिचय सब अपना होकर स्थित मैं आनन्द में चिरकाल,
जाल मुक्त । ज्ञानाम्बुधि वीचिरहित ।"[6]

निरालाजी ने नारी-मुक्ति की कामना इस प्रकार की है-

"तोड़ो,तोड़ो कारा---गृह,गृह की पार्वती--"[7]

१- निराला- परिमल- पृष्ठ- २०४

२- निराला- तुलसीदास- पृष्ठ- २८

३- निराला- परिमल- पृष्ठ- २६१

४- वही - पृष्ठ- २५२

५- निराला- गीतिका-मल्लि- पृष्ठ- ४

६- निराला- परिमल- पृष्ठ- २६२

७- निराला- अनामिका- पृष्ठ- १३७

कविता की मुक्ति का आवाहन निरालाजी ने इस प्रकार किया है -

'आज नहीं मुझे और कुछ चाह,
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू,
प्रिये छोड़कर बंधनमय छन्दों की छोटी राह
गजगामिनी वह पथ तेरा संकीर्ण, कण्टकाकीर्ण---[1]

इसी प्रकार भाषा की जागृति का आवाहन इन पंक्तियों में दृष्टव्य है -

'जागो, नव अंबर-भर, ज्योतिस्तर वासे,
उठे स्वरोर्मियों-मुखर, दिक्कुमारिका-पिक-रव ---[2]

इनके अतिरिक्त अन्य रचनाओं में भी मुक्ति संबंधी अभिव्यक्तियाँ देखी जा सकती है.[3]

४ - समापन : विशुध्द वैचारिक, तथा काव्यात्मक धरातल पर निरालाजी की दार्शनिक मान्यताओं के उपरोक्त अध्ययन अध्ययन एवं विवेचन के आधार पर यह सिध्द होता है कि निरालाजी के कवि-व्यक्तित्व का चिन्तन पक्ष अत्यन्त पुष्ट, प्रामाणिक, एवं परम्परानुकूल है. साथ ही उनके चिन्तन एवं मनन की व्यापकता तथा गहनता के फलस्वरूप उनके काव्य में गंभीरता और गरिमा दृष्टिगत होती है.

---

१ - निराला - अनामिका-पृष्ठ २४,. २ - निराला-गीतिका-पृष्ठ ९२.
३ - निराला -परिमल -पृष्ठ -१४९, गीतिका-पृष्ठ -६२ आदि.

वस्तुत: उक्त संपूर्ण विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि निराला जी की बौध्दिक चेतना उतनी व्यापक थी जितनी कि एक दार्शनिक - विचार सरणि- निर्माता के लिये आवश्यक होती है. अर्थात प्राचीन तथा आधुनिक दर्शन-शास्त्र के विविध अंगों-पांगों पर निराला जी ने किसी न किसी रूप में स्वतंत्र रूप से विचार अवश्य किया है. यदि वे दर्शन शास्त्र के विविध अंगो की चर्चा में एकसूत्रता स्थापित करने का प्रयास करते तो आधुनिक दार्शनिक विचार-सरणि के पुरस्कर्ता सिध्द होते. परंतु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, निरालाजी मूलत: और अंतत: कवि हैं, तथा दार्शनिकता उनका मूलभूत उपलक्षण है.

उपरोक्त समस्त अध्ययन के आधार पर निरालाजी के दर्शन का जो स्वरूप स्पष्ट होता है उसे, अन्य किसी पारंपरिक शब्द का प्रयोग न किये जा सकने के कारण, तथा प्राचीन अद्वैतवादी विचार-सरणि से वैभिन्य प्रदर्शित करने के लिये - 'आधुनिक रहस्यवादी अद्वैतवाद' कहा जा सकता है . आधुनिक इसलिये कि (१) वह अद्वैतवाद के आधुनिक व्याख्याता स्वामी विवेकानंद के अद्वैतवाद पर आधारित है, तथा) २ (उनका अद्वैतवाद आधुनिक दर्शन के उन विषयों का भी स्पर्श करता है, जिनकी चर्चा प्राचीन भारतीय अद्वैतवाद में दृष्टिगत नहीं होती- यथा व्यक्ति समाज - संबंध, राष्ट्रीयता, इत्यादि.

निरालाजी के अद्वैतवाद को रहस्यवादी अद्वैतवाद इसलिये कहा जा सकता है कि, निभ्रान्ति रूप से और समग्रतया, उनके अद्वैतवाद को शंकर के सताद्वैतवाद, रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद, या वल्लभाचार्य के शुध्दद्वैतवाद के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता . वस्तुत: उनके अद्वैतवाद में एक ओर जहाँ वैदिक दार्शनिकों का सा काव्यात्मक चिंतन-स्वातंत्र्य तथा असीमता के दर्शन होतें है, वहीं दूसरी ओर उनके अद्वैतवादे में ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग के सम्मिश्रण के साथ साथ वैष्णव शाक्त और कुछ अंशों तक परवर्ती बौध्द विचारधारा का समन्वयात्मक रूप भी दृष्टिगत होता है. निरालाजी के इस अद्वैतवाद में उक्त प्राचीन एवं नवीन विचार धाराओं के समन्वय को निम्नलिखीत रूप में स्पष्ट किया जा सकता है.

जिस युगमें निरालाज की बौद्धिकता, अपना स्वरूप ग्रहण कर रहीं थी, उस समय सामान्यत: भारत के तथा विशेष रूप से बंगाल के अंग्रेजी पढे-लिखे समाज में प्राय: शांकर-अद्वैत का विशेष प्रचार था. तत्कालीन भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे गये धार्मिक और दार्शनिक साहित्य का का अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि ब्रह्मोसमाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन थियोसोफिकल सोसायटी, प्रार्थना समाज, आदि की सुधारवादी, निर्गुणवादी, सन्यासवादी, मानवतावादी,

---

इत्यादि विचार धाराएँ तत्कालीन साहित्य में प्रधान रूप से प्रचलित थीं. भारतीय विचारकों में राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी राकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि देवेन्द्रनाथ, अेनी बेसंट, रवीन्द्रनाथ, गोपालकृष्ण गोखले, लोकमान्य तिलक, आर. जी. भांडारकर, अरविंद घोष, आदि तथा अंग्रेज विचारकों में मैक्समूलर, विलसन, फरग्यूसन आदि की विचार धाराओं से भारत का लगभग समूचा बुध्दिजीवी वर्ग प्रभावित था.[१] पूर्ववर्ती अध्यायन द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है कि निरालाजी की किशोरावस्था एवं यौवन का कुछ काल बंगाल में व्यतीत हुआ था. अत: वहाँ के विचारको ने उन्हें अद्वैतवादी बना दिया. वस्तुत: उनका अद्वैतवाद, शंकर आदि आचार्यों द्वारा प्रवर्तित अद्वैतवाद नहीं है, वरन् वह निश्चित रूप से स्वामी विवेकानंद द्वारा व्याख्यायित अद्वैतवाद है.[२] निरालाजी की प्रारंभिक रचनाओं में जो दार्शनिकता मुख्य रूप से दृष्टिगत होती है, वह स्वामी विवेकानंद के समूचे दार्शनिक विचारों से प्रभावित ही नहीं अपितु परिसीमित भी है. आशय यह कि निराला जी के दर्शन की व्याप्ति, स्वामी विवेकानंद के दर्शन की सीमाओं से मर्यादित है. जिस अंश तक स्वामी विवेकानंद का अद्वैतवाद, शांकर अद्वैतवाद के ज्ञानवाद के विपरीत आधुनिक कर्मवाद से युक्त है, उसी अंश तक निरालाजी की अद्वैतवादी मान्यताओं में ज्ञानवाद और कर्मवाद का समन्वय दृष्टिगत होता है. स्वामी विवेकानंद का

---

१ - Ed. Sircar Jadunath - History of Bengal, Vol: II, P.498 (Dacca University)
तुल: भटनगर रामरतन- निराला और नवजागरण पृष्ठ ३१-४८.

२ - तुल : भटनगर रामरतन-निराला और नवजागरण पृष्ठ १८८-१९४.
तुल : शर्मा रामविलास -निराला-पृष्ठ ३८.

अद्वैतवाद, राजयोग को न केवल मोक्ष का साधन मानता है, वरन् वह उसका प्रचार भी करता है. निरालाजी की रचनाओं में भी योग तथा योग की पारिभाषिक शब्दावली का बहूल्लेख यही सिद्ध करता है कि स्वामी विवेकानंद के अद्वैतवाद के समान, निरालाजी का अद्वैतवाद भी योग से प्रभावित है. आशय यह कि जिस युग में निरालाजी की बौध्दिक चेतना विकसित हो रही थी, उस समय सामान्य रूप से भारत में, और विशेष रूप से बंगाल में जो दार्शनिक विचारधाराएँ प्रचलित थी, उन्हें निरालाजीकी विकसनशील चेतना ने स्वीकार कर लिया था.[१] यद्यपि निरालाजी ने अनेक स्थानों पर तत्कालीन दार्शनिक विचारधाराओं की नवीन व्याख्या करने का प्रयास अवश्य किया है, परंतु इन प्रयासों में वह मिशन दृष्टिगत नहीं होता जो उनके कविकर्म में दिखायी देता है.[२] तात्पर्य यह कि निरालाजी सचेत, बुध्दिजीवी कलाकार थे. यद्यपि उनकी बौध्दिक चेतना पर तत्कालीन विचारों का प्रभाव था, तथापि इन प्रभावों से उनकी मौलिकता दबी नहीं. मूलता वे कवि थे, अतः दर्शन को उन्होंने अपने जीवन का मिशन नहीं बनाया, परंतु दर्शन, उनके जीवन का विषय अवश्य बन गया. इसीलिये उनका कवि व्यक्तित्व, दार्शनिक कवि - व्यक्तित्व बन गया.

स्वामी विवेकानंद के दर्शन का उन विशेषताओं की ओर निम्नलिखित रूपमें संकेत किया जा सकता है, जो निरालाजी की प्रारंभिक रचनाओं में प्रधान रूप से मिलती है.

---

१ - भटनागर रामरतन - निराला और नवजागरण -पृष्ठ ७०.
२ - बाजपेयी नंददुलारे - हिंदी साहित्य २० वी शताब्दी पृष्ट पृष्ठ १२७, १४१.

१ - उनका दर्शन 'गत्यात्मक अध्यात्मवाद' (Dynamic-Spiritualism[1]) है. गत्यात्मक इस दृष्टि से कि वह सक्रिय एवं सशक्त है.

२- उन्होंने वेदान्त-दर्शन के तीन सोपान माने हैं- द्वैत, विशिष्टाद्वैत, तथा अद्वैत.[2] इस प्रकार उन्होंने अद्वैतवाद की एकता स्थापित करने का प्रयास किया तथा संसार के धर्मों की एकता का निर्देश किया.[3]

३ - ज्ञान, भक्ति, और कर्म में विरोध का अस्वीकार करते हुए, भक्तियोग तथा कर्मयोग को ज्ञान योग के प्रारंभिक सोपान स्वीकृत किये हैं. उन्होंने उक्त तीनों तत्वों का समन्वय इस प्रकार स्थापित करने का प्रयास किया है, कि जिसमें तीनों में से किसी भी एक तत्व की प्रमुखता न हो.[4]

४ - स्वामीजी मूलत: अद्वैतवादी होने पर भी मूर्तिपूजा का विरोध न कर, उसका अद्वैत दर्शन के साथ समन्वय किया है.[5] यद्यपि उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया है कि मूर्तिपूजा द्वारा 'मुक्ति' की सहज एवं सीधी प्राप्ति हो सकती है.[6]

---

1. -
2. -

१ - Prabuddha Bharat 1961-62, Vivekanand and Dynamic - Spirituation, Roy Benoy Gopal-p. 213.

२ - Vivekandnd-The Complete Works, Part V.p.64 (Mayavati Ed.1924)

३ - Prabuddha Bharat 1961-62, Roy Benoy Gopal, p. 214.

४ - - Ibid - p. 219

५ - - Ibid - p. 218

६ - - Selections from Swami Vivekananda - 1944 - p. 373-374

५ - उन्होंने माया को 'विरोध' (Contradiction) के रूप में स्पष्ट करते हुए, भौतिकवाद को समझाने तथा उसका नाश करने के हेतु उसका आधार लिया है।[१]

६ - उन्होंने, मनुष्य के बाह्यजगत् की अपेक्षा उसके अंतर्जगत को परिवर्तित एवं परिमार्जित करने की आवश्यकता पर बल दिया है।[२]

७ - स्वामीजी समस्त दु:खों एवं बंधनों के मूल में अज्ञान को कारणभूत माना है, तथा यह स्वीकार किया है कि ज्ञान या स्वानुभव अथवा स्वयंप्रतीति (Self-Realization) द्वारा ही दु:खों एवं बंधनों से मुक्ति मिल सकती है।[४]

८ - उन्होंने नैतिकता और समाज सेवा की, दर्शन और धर्म के साथ सुसंवादिता स्थापित करने का प्रयास किया। उनके दर्शन में धर्म, नैतिकता तथा सामाजिक नीति, परस्पर अनुस्यूत है।[५]

परंतु यह तथ्य उल्लेखनीय है कि निरालाजी की रचनाओं में शनैः शनैः अद्वैतवाद की उक्त विशेषताओं में से कतिपय छूटती जाती है और उनके स्थान पर उनकी परवर्ती रचनाओंमें रामानुज, वल्लभाचार्य आदि वैष्णव आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित अद्वैतवाद की सामान्य

1- PPh. R.B.R p. 218.
2- [illegible] - विवेकानंद और [illegible] शताब्दी
3- Prabhuddha Bharat 1961-62, Roy Benoy Gopal, p.212.
4- Teachings of Swami Vevekanand(May 1959)([illegible])p.162-63.
5- Prabhuddha Bharat 1961-62, Roy Benoy Gopal p.221.

विशेषताएँ प्रमुख रूप से दृष्टिगत होने लगती हैं. इस तथ्य के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि निराला जी के परवर्ती जीवन काल में, उनकी काव्य चेतना को उनके आदर्श कवि गो. तुलसीदास[1] ने विशेष रूप से प्रभावित किया था. अतः यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन के परवर्ती काल में विवेकानंद के अद्वैतवादी निराला, तुलसीदास तथा उनके अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत आदि के अनुयायी या अनुगामी बन जाते हैं.[2]

५ - उपसंहार :- इस प्रकार स्पष्ट होता है कि निरालाजी के अद्वैतवाद पर प्रारंभ में जहा स्वामी विवेकानंद का अधिक प्रभाव है, वहाँ उनके उत्तरकाल में सूर-तुलसी की दार्शनिक मान्यताओं का प्रभाव अधिक दिखायी देता है. परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी पूर्वकालीन रचनाओं में सूर-तुलसी की वैष्णव भक्ति तथा बंगाल की शाक्त-भक्ति का अभाव था, और उनकी उत्तरकालीन रचनाओं में स्वामी विवेकानंद का प्रभाव समाप्त हो गया था.

---

१ - तुल - भटनगर रामरतन - निराला और नवजागरण पृष्ठ १८८.
२ - तुल - निराला -चयन - पृष्ठ १३४.

( )

वस्तुत: समस्त भारतीय चिन्तन धाराएँ, निरालाजी की बौध्दिक चेतना की प्रेरणास्रोत रही है. युगानुकूल ग्राह्य-तत्वों को तथा विविध भारतीय दार्शनिक विचार सरणियों एवं कुछ पाश्चात्य विचार धाराओं को ग्रहण कर, निराला जी ने अपनी विशिष्ट दार्शनिक मान्यताओं को काव्यात्मक रूप प्रदान किया है. अत: विशिष्ट आधुनिक दार्शनिक कवि कहा जा सकता है.

अगले अध्याय में ' काव्य-कला-दर्शन ' के विवेचन केअंतर्गत, निरालाजी के काव्य -कला विषायक चिन्तन का भी अध्ययन एवं अनुशीलन किया जा रहा है.